पुस्तक:
समाजशुद्धि के अहिंसक कदम

सम्पादक एवं हिन्दी अनुवादक:
पं० मुनि नेमिचन्द्र जी महाराज

प्राक्कथन:
राष्ट्रसंत कविरत्न उपाध्याय श्री अमरचंद जी महाराज

अपनी बात:
वात्सल्यमूर्ति प्रयोगमार्गदर्शक मुनिश्री संतबाल जी महाराज

प्रकाशक:
सन्मति ज्ञानपीठ, लोहामंडी, आगरा

प्रथम प्रवेश:
विजयादशमी, अक्टूबर १९७२

मूल्य:
दो रुपये

मुद्रक:
कल्याण प्रिंटिंग प्रेस, अहीरपाड़ा, आगरा-२

संपादकीय

समाज में व्याप्त अनेक समस्या का स्थायी और अहिंसात्मक हल न तो दण्डशक्ति है और न ही अराजकता है; वह वात्सल्यशक्ति है, जिसका इस पुस्तक में दिग्दर्शन कराया गया है। गुजरात में वात्सल्यमूर्ति पू० मुनिश्री संतबालजी महाराज की प्रेरणा से चल रहे प्रयोग में संलग्न श्री नानचन्द भाई, श्री फलजीभाई, अम्बुभाई सुराभाई जैसे निष्ठावान जनसेवकों द्वारा समाधान-वार्ता से लेकर सामाजिक-नैतिक दवाव, मध्यस्थनिर्णय या अहिंसक प्रतीकार द्वारा इन समस्याओं का स्थायी हल करके अहिंसक समाजरचना की दिशा में एक नया कदम प्रस्तुत किया है। प्रस्तुत पुस्तक मेरे द्वारा गुजराती में सम्पादित 'शुद्धिप्रयोगनी पूर्वप्रभा' का 'समाजशुद्धि के अहिंसक कदम' के रूप में हिन्दी रूपान्तर है। पुस्तक में पारिवारिक, सामाजिक, संस्थाकीय, व्यवसायीय एवं राष्ट्रीय जीवन के ५२ प्रसंगों का स्थायी सफल हल का यथार्थ शब्दसंकलन है। इससे गाँवों और नगरों में धर्ममय (अहिंसक) समाजरचना के प्रयोग में संलग्न एवं श्रद्धालु जन-सेवकों तथा कार्यकर्ताओं को तो सुन्दर मार्गदर्शन मिलेगा ही; साधारण जनता एवं अहिंसाप्रेमी जनों को भी अहिंसात्मक प्रयोगों की नई दिशा और तालीम मिलेगी।

अनेक महत्वपूर्ण कार्यों में व्यस्त हुए भी वात्सल्यहृदय श्रद्धेय राष्ट्रसंत कविरत्न उपाध्यायश्री अमरचन्दजी महाराज ने पुस्तक के लिए अपना बहुमूल्य प्राक्कथन तथा वात्सल्यमूर्ति प्रयोग-मार्गदर्शक पू० मुनि श्री संतबालजी महाराज ने 'अपनी बात' लिखने की कृपा की है, एतदर्थ मैं उनका आभारी हूँ। शान्तमूर्ति श्रद्धेय पू० आचार्यश्री विजयसमुद्रसूरिजी म० की प्रेरणा से उनके गुरुभक्त सेवकों ने पुस्तक के लिए आर्थिक सहयोग दिया है; एतदर्थ उन्हें धन्यवाद !

पुस्तक का सम्पादन और हिन्दी-रूपान्तर कैसा हुआ है ? इसके निर्णय का भार मैं पाठकों पर ही छोड़ता हूँ।

आशा है पाठक पुस्तक से लाभान्वित हो कर मेरे प्रयास को सफल करेंगे।

जैनभवन, लोहामण्डी, आगरा]

मुनि नेमिचन्द्र

प्रकाशक की ओर से

अहिंसक समाजनिर्माण की दिशा में 'समाजशुद्धि के अहिंसक कदम' पुस्तक अहिंसाप्रेमी पाठकों के हाथों में पहुँचाते हुए हमें अत्यन्त हर्ष हो रहा है। प्रस्तुत पूस्तक में सामाजिक जीवन के विविध क्षेत्रों में उपस्थित होने वाले पेचीदा मसलों, अनिष्टों, झगड़ों, बुराइयों एवं अनैतिक व्यवहारों से सम्बद्ध घटनाओं में समाधानवार्ता, सामाजिक नैतिक दवाव या अहिंसात्मक प्रतीकार द्वारा समाधान एवं शुद्धीकरण की प्रक्रिया का महत्वपूर्ण शब्दसंकलन है। गुजरातवर्ती भालनलकांठाप्रदेश में चल रहे धर्ममय समाजरचना के प्रयोग में संलग्न व्रतवद्ध जनसेवकों द्वारा समय-समय पर किये हुए ये सव सफल प्रयोग हैं। प्रस्तुत पुस्तक सर्वप्रथम १९६२ में मुनिश्री नेमिचन्द्रजी द्वारा सम्पादित हो कर प्रकाशित हुई है। उसी का हिन्दी रूपान्तर मुनि श्री द्वारा हो कर अव सन्मति ज्ञानपीठ द्वारा प्रकाशित हो रही है। राष्ट्रसंत उपाध्याय कविरत्न श्री अमरचन्दजी महाराज का प्राक्कथन और धर्ममय समाजरचना के प्रयोगकर्ता मुनिश्री संतबालाजी महाराज की 'अपनी बात' पुस्तक की शोभा में चार चाँद लगा देती है।

पुस्तक प्रत्येक अहिंसाप्रेमी के लिए मननीय और पठनीय है। इससे पाठकों को पारिवारिक, सामाजिक एवं रष्ट्रीय जीवन में उपस्थित अटपटे प्रश्नों को अहिंसक ढंग से हल करने का सुन्दर मार्ग दर्शन मिलेगा, अहिंसा के प्रयोगों की नई दिशा भी मिलेगी।

मुनि श्री नेमिचन्द्रजी ने यह पुस्तक आगरा जिला 'किसानमंडल द्वारा ज्ञानपीठ को प्रकाशनार्थ सौंपी है। हिन्दी साहित्यजगत् को मुनि श्री की यह अपूर्व देन है। इसके लिए हम ज्ञानपीठ की ओर से मुनिश्री का अभिनन्दन करते हैं। पुस्तक की भाषा सरल, सरस, सुगम्य और सुन्दर है।

अहिंसा के उपासकों की चिरकालीन माँग को पूर्ण करके हम प्रसन्नता महसूस करते हैं।

मंत्री

सन्मति ज्ञानपीठ, लोहामंडी, आगरा

अपनी बात

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। वह केवल अन्न पर जीवित नहीं रहता। मुख्यरूप से समाज में गौरवपूर्वक जीने की उसकी भूख होती है। हमारा अनुभव है कि एक छोटे-से बालक के स्वाभिमान को जब चोट पहुँचती है या कोई इसके साथ अन्याय करता है तो वह सहन नहीं कर सकता। अपने में विशेष प्रतीकार शक्ति न होने से वह रोता है, सिर पछाड़ता है, हाथ में पकड़े हुए खिलौने को तोड़ डालता है, उसे न्याय और स्वाभिमान प्राप्त होता है, तभी दम लेता है। समाज में हत्या, लूट, आत्महत्या और छोटे-बड़े युद्ध ऐसी विद्रोह-वृत्ति में से ही पैदा होते हैं। इस विद्रोही वृत्ति को सुमार्ग की ओर मोड़ देना धर्म का एक महत्वपूर्ण कार्य है।

यही कारण है कि हमारे राष्ट्र में राज्य की अपेक्षा समाज महान् था। परिवार और राज्य के बीच का स्थान ऐसे समाज ने ले लिया था। जातियाँ ऐसे विशाल समाज की छोटी इकाइयाँ थीं। कालक्रम से इनकी महिमा बढ़ती गई। किसी परिवार या व्यक्ति के प्रति अन्याय होता तो ये जातियाँ उसे न्याय दिलाती। जो अपराधी अपने अपराध का स्वीकार करके इनके द्वारा दिया गया दण्ड या प्रायश्चित्त स्वीकार नहीं करता था, उस व्यक्ति या समूह के साथ जाति की पंचायत असहकार या बहिष्कार तक करती थीं। समय बीता। पूर्व और पश्चिम नजदीक आए। धन और सत्ता का जोर बढ़ा। जाति के अगुए भी इसी मार्ग पर मुड़े और न्यायपरायण जातियाँ संकीर्णरूप धारण करके पक्ष-पात और अन्याय करने लगीं। इसलिए जातियों के बदले में लोग न्यायालयों में जाने लगे। वहाँ भी निराशा ही हाथ लगी। चालाक वकील और पैसे के जोर से अन्यायी पक्ष जीत जाता। एक कोर्ट में हारता तो दूसरी में जाता। न्यायप्रिय और शुद्ध न्यायाभिलाषी मानव थक कर हताश हो जाता। इसके परिणामस्वरूप या तो अन्यायपीड़ित स्वयं उद्दण्ड बन कर कानून हाथ में लेने लगा या ऐसे उद्दण्डों की शरण में जाने लगा।

ऐसी स्थिति विकासमान लोकतंत्र के लिए सबसे ज्यादा खतरनाक साबित हुई। महात्मा गाँधीजी ने अहिंसात्मक प्रयोग किये थे। मुझे भी गहरा विचार करते हुए यह लगा कि समाज की शुद्धि हो और उसे अहिंसा की तालीम मिले, इसके लिए कानूनभँग किये बिना, पुलिस, कोर्ट और सरकारी तंत्र का आश्रय लिए बिना समाधानवार्ता, नैतिक-सामाजिक दबाव, मध्यस्थ द्वारा निर्णय या अन्त में शुद्धिप्रयोग की प्रक्रिया जनसेवकों और जनता के द्वारा अपनानी चाहिये। समाज-शुद्धि के ये सब कदम जनसेवकों के द्वारा संस्थागत रूप से उठाए जाने चाहिए, ताकि व्यक्तिगत या समूहगत पक्षपात, रागद्वेष या आसक्ति ऐसे प्रयोगों में न घुस सके। अपराधी को शारीरिक सजा नहीं होनी चाहिए। ये प्रयोग समाज में बिखरे हुए सज्जनों का एकीकरण करते हैं, दुर्जनों व अपराधियों को अपनी जीवनशुद्धि करने को बाध्य करते हैं, कहीं-कहीं जबर्दस्त हृदयपरिवर्तन भी करते हैं।

गुजरातवर्ती भालनलकांठाप्रदेश में समाज में फैले हुए विविध अनिष्टों, बुराइयों, अन्यायों और झगड़ों को शीघ्र, शुद्ध और सस्ते न्याय के रूप में सफल समाधान और हल किये गए हैं, समाजजीवन के सभी क्षेत्रों के अटपटे प्रश्नों और पेचीदा मसलों को भी न्याय, नीति और अहिंसा की दृष्टि से सुलझाया गया है।

परन्तु यहाँ एक बात स्पष्ट कर देनी आवश्यक है कि समाजशुद्धि के इन अहिंसात्मक प्रयोगों की प्रक्रिया में सर्वत्र न्यायनिष्ठ राष्ट्रीय महासभा, नीतिनिष्ठ जनता, व्रतबद्ध जनसेवक और क्रान्तिप्रिय साधुवर्ग इन चारों का संगठन और परस्पर विश्ववात्सल्य ध्येयानुकूल अनुबन्ध होना अनिवार्य है। दृष्टिसम्पन्न कार्यकर्ताओं द्वारा ऐसे संगठनों के सन्दर्भ में काम करने पर समाज के जटिल दिखाई देने वाले प्रश्न भी आसानी से कैसे हल हो जाते हैं? यह प्रतीति इस पुस्तक पर से सहजसिद्ध हो जायगी।

प्रस्तुत पुस्तक सर्वप्रथम गुजराती में मेरे प्रिय साथी नेमिमुनिजी की सधी हुई लेखनी से 'शुद्धिप्रयोगनी पूर्वप्रभा' के नाम से संपादित हुई है। अब लगभग १०-११ वर्षो बाद यह पुस्तक 'समाजशुद्धि के अहिंसक कदम' के नाम से इन्हीं

मुनिजी द्वारा हिन्दी में रूपान्तरित हो कर सम्मति ज्ञानपीठ, आगरा से प्रकाशित हो रही है।

इसमें भालनलकांठाप्रदेश में परिवार, वर्ग, जाति और समाज में बनी हुई ५२ घटनाओं का हूबहू वर्णन किया गया है। वास्तव में घटनाचक्रों में क्या-क्या उतार चढ़ाव आए ? अन्त में कैसे सफलता मिली ? इन सबका यथार्थ आलेखन किया गया है। समाजशुद्धि के इन सब प्रयोगों का संचालन भालनलकांठाप्रदेश के मुख्य निष्ठावान सेवकों की सूझबूझ, प्रयोगकुशलता और अहिंसक कदम की तत्परता से हुआ है। इनमें से अधिकांश घटनाएँ मुख्यतया श्री नानचंद भाई (वर्तमान में संन्यासामिमुख श्रीज्ञानचन्द्रजी) के हाथों से सफल हुई हैं। कुछ मसले श्री फ़लजीभाई, श्री अंबुभाई तथा श्री सुराभाई आदि अन्य जनसेवकों द्वारा भी हल हुए है।

अनुभवयुक्त प्रसंगों की दृष्टि से यह पुस्तक बहुमूल्य एवं मार्गदर्शक सिद्ध होगी हिन्दी-भाषी क्षेत्रों में यह पुस्तक अवश्य ही लोकप्रिय होगी, ऐसा मेरा विश्वास है। अहिंसक (धर्ममय) समाज रचना में विश्वास रखने वाले व्यक्ति के लिए पुस्तक बड़ी ही उपादेय होगी।

महावीरनगर अन्तर्राष्ट्रीय केन्द्र
चींचणी (महाराष्ट्र)

—संतबाल

प्राक्कथन

मानव मूल में मानव है। न वह दानव है, और न पशु ही। दानवता या पशुता की जो विरूपता कभी-कभी और कहीं-कहीं उभरती दीखती है; वह आपातित है, मौलिक नहीं। दर्शन की भाषा में वह वैभाविक है, स्वाभाविक नहीं; वह विकृति है, प्रकृति नहीं।

यही कारण है कि भारतीय धर्म जघन्य से जघन्य अपराधी के प्रति भी सद्भावना की उदार दृष्टि रखते हैं। उनकी उदात्त दृष्टि में अपराध बुरा है, अपराधी नहीं। बड़े से बड़े अपराधी के साथ भी यदि सहृदयता रखी जाए तो वह अपराध-मुक्त और शुद्ध हो सकता है। उस पर लगी हुई अशुद्धि क्षणिक है। पर्वत की कठोर चट्टानों को तोड़ कर जैसे अंदर में से निर्मल जलधारा प्रस्फुटित होती है, वैसे ही ऊपर के गंदे आवरणों को तोड़ कर विशुद्ध मानवता प्रस्फुटित होती है।

मानवजीवन में अशुद्धियाँ कई कारणों से घुसती हैं। कुछ अशुद्धियाँ तो समाज में व्याप्त होती हैं—अज्ञानता, अन्धविश्वास, गलत रूढ़ियों, विलासिता या विषमता आदि के कारण; कुछ व्याप्त होती हैं—जीवनयात्रा में साधन-पूर्ति के लिए आसक्त हो कर धर्म की सीमाओं को तोड़ कर येन-केन-प्रकारेण मानव के स्वार्थसिद्धि में लग जाने के कारण। अन्ततः राजदण्ड का भय भी उसके मन से निकल जाता है। वह उद्दण्ड, धृष्ट और उच्छृंखल हो जाता है। यही आज तक के अपराध का इतिहास है। भयंकर अपराधों के लिए प्राणदण्ड तक की कठोर सजा दी जाती है, पर अपराधों की समस्या ज्यों की त्यों है; समाजशास्त्रियों को वह चिन्तित किये हुए है।

सवाल यह है कि इस चिरागत समस्या से कैसे निपटा जाए? कैसे मानव को पशुत्व की भूमिका से ऊपर उठाया जाय? भारतीय संस्कृति में समाज में व्याप्त अपराध और अशुद्धि के मूलतः निवारण के लिए यथार्थ उपाय हैं—अपराधी के प्रति उदार दृष्टि रख कर समझाना-बुझाना, सामाजिक-नैतिक

दबाव डालना या अहिंसात्मक ढंग से प्रतकार करना। भारतीय धर्मचिन्तन में इसके प्रयोग चले आ रहे हैं; जिनका सामाजिक एवं राजनैतिक क्षेत्र में मुक्त प्रयोग किया है—महात्मा गाँधीजी ने। स्वतन्त्रता-संग्राम के समय सत्याग्रह और सविनय असहयोग आन्दोलन आदि उसी प्राचीन चिन्तनधारा के प्रयोगात्मक रूप हैं।

गुजरातवर्ती भालनलकांठाप्रदेश में विश्ववात्सल्य ध्येय के अनुसार भालनलकांठा प्रायोगिक संघ ने पिछले कई वर्षों में ऐसे ही कुछ अहिंसक प्रयोग किए हैं। विवेकप्रधान सहृदयता की दिव्यमूर्ति मुनिश्री सतवालजी ने तथा उनके मार्गदर्शन से उनके अनेक निष्ठावान कार्यकर्ताओं ने अहिंसक समाजरचना की दिशा में बड़े ही महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक मूल्य के कदम उठाए हैं। इसी सन्दर्भ में सामाजिक अपराधों के प्रतीकार का उनका तरीका भी अनोखा है। उसके मूल में भी वही उदार सद्भावना है अपराधी के प्रति; जो अन्तत अपराधी के हृदयपरिवर्तन में सहायक होती है, उसकी सुप्त मानवता को जागृत कर देती है। आज बिखरे हुए दिशामूढ़ मानवचिन्तन को विशुद्ध परिबोध देने के विचार से समाजजीवन में घटित उन अहिंसक प्रयोगों का एक शब्दसकलन 'शुद्धि-प्रयोगनी पूर्वप्रभा' के नाम से गुजराती भाषा में पं० मुनिश्री नेमिचन्द्रजी के हाथों सम्पादित हुआ है। वह प्रबुद्ध जनता में अच्छा लोकप्रिय प्रमाणित हुआ है। प्रस्तुत 'समाजशुद्धि के अहिंसक कदम' उसी का हिन्दी रूपान्तर है। वह भी मूल सम्पादक मुनिश्री जी की सधी हुई लेखनी का बहुमूल्य प्रसाद है। मुनिश्री विद्वान हैं, चिन्तक हैं, चिन्तन का निष्ठा के साथ जीवन में उतारते भी हैं। वे स्वयं अहिंसक (धर्ममय) समाजरचना के क्षेत्र में कार्य करते रहे हैं, अब भी कर रहे हैं। और वे जो कुछ भी करते हैं, उन सब में उनकी सहज साधुता साथ होती है। मैं मुनिश्री की विनम्रता, सरलता व स्वच्छ सहृदयता का, जो कि निर्मल साधुता का वास्तविक रूप है, हृदय से प्रशसक हूँ।

किसी भी व्यक्ति की सभी कर्तव्यविधाओं से सहमत होना कोई जरूरी नहीं है। इस सम्बन्ध में विचारभेद हो सकते हैं। परन्तु जो अच्छा है, अपने मन को अच्छा लगा है, उसके लिए तो अच्छा कहना सर्वथा उचित है।

मुनिश्री ऐसे ही भावों में अच्छे हैं 'समाजशुद्धि के अहिंसक कदम' उनकी ओर से वह साहित्यिक देन है, जो वास्तव में समाज-निर्माण की प्रेरणा देती है; मानव की मौलिक विशुद्धि में विश्वास जगाती है। अहिंसात्मक प्रतीकार के कुछ प्रयोगचित्र तो काफी प्रभावक हैं।

मैं आशा करता हूँ, मुनिश्री का यह श्रम समाज में व्याप्त अश्री को श्री में वदलेगा, जनमानस को चिन्तन की एक नई दिशा प्रदान करेगा।

जैनभवन, मोतीकटरा, आगरा
ता० १२—१०—१९७२

—उपाध्याय अमरमुनि

विषय-सूची

समाजशुद्धि के अहिंसक कदम

: १ :

गौशाला के नाम से

[भारतवर्ष धर्मदृष्टि से घड़ा हुआ देश है। धर्म समाज-जीवन की शुद्धि और चिकित्सा करने वाला है, जबकि दूसरी ओर धर्म के नाम से अन्धविश्वास, कुरीतियाँ, ठगी आदि अनेक अनर्थ फैले हैं; जिससे समाजजीवन में अशुद्धि घुसी है। इस देश में धर्म के नाम से गाय, अनाथ अथवा अमुक करुण आफतों के नाम से अनेक लोग अपना स्वार्थ सिद्ध करते हैं। समाज की या समाजसेवकों की जागृति न रहे तो ऐसी अशुद्धि समाज में घर कर जाती है। नीचे का प्रसंग गौशाला के नाम से धर्म का झव्वा पहन कर लोगों को ठगने वालों का है। यह समाज की अजागृति और अन्धश्रद्धा का नमूना पेश करता है। फिर भी इसमें एक समाज-सेवक की अन्याय के सामने घुटने नहीं टेकनें और कानूनी कार्यवाही के लिए अनिच्छा प्रगट करने की जागृति तथा न्यायालय में साधुओं द्वारा भूल स्वीकार करने की प्रवृत्ति प्रेरणादायक है।]

दोपहर का समय था। मैं बाजार जा रहा था। तभी रास्ते में एक व्यापारी की दुकान पर मैंने चार-पांच भगवां कपड़े पहने हुए साधु खड़े देखे। वे कह रहे थे "हमारी गौशाला चल रही है। उसके लिए हमें चन्दा चाहिए। हमारे पास यह रसीदबुक भी है।" इसके अलावा गौशाला के नाम से छपे हुए कुछ कागज भी अनेक लोगों को इकट्ठे करके वे वता रहे थे। मैंने यह सब देखा तो मेरे मन में शक हुआ कि 'ये साधु धर्म का झव्वा पहन कर लोगों की भावनाओं को बुरी तरह से उभाड़ कर गौशाला के नाम से चन्दा कर रहे मालूम होते हैं।' इससे मैंने उनसे पूछा—"आपके पास अपनी गौशाला की कोई छपी हुई रिपोर्ट हो तो मुझे बताओ।" वे बोले—'रिपोर्ट तो हमारे

पास नहीं है; किन्तु रसीदबुकें और कई संस्थाओं के प्रमाणपत्र हैं। अनेक स्थानों से मिले हुए चन्दे का उल्लेख हमारे पास है।" मैंने कहा—"रिपोर्ट के विना आप लोगों का इस प्रकार से चन्दा इकट्ठा करना मुझे उचित नहीं लगता। आपकी वातों में मुझे सचाई मालूम नहीं देती। अपनी संस्था की विशेष प्रतीति कराने के वाद ही आप जनता से चन्दा करें, यह मेरा आपसे नम्र निवेदन है।" यह सुनते ही उन्होंने मेरे सामने कड़ी आँख करके कहा—"हमारे काम में तुम्हें मगज मारने का क्या अधिकार है ? तुम अपने काम में लगो; हमें अपना काम करने दो।"

इन साधुओं के साथ ही दूसरे कुछ अन्धश्रद्धालु लोगों ने मेरे खिलाफ आपत्ति उठाई—"ऐसे धर्मादे के काम में तुम्हें वीच में सिरपच्ची करने की क्या जरूरत है ? तुम अपने काम में लगो। इनका पाप होगा तो ये खुद भोगेंगे।"

एक समाजसेवक के तौर पर मेरा यह कर्त्तव्य था कि मैं अपनी आँखों के सामने होता अन्याय या धर्म के नाम से होती ठगाई देखूँ तो दृढ़ रह कर उसका प्रतिकार करूँ। इसलिए मैं तो अपनी वात पर अड़ा हुआ था। मैंने कहा—"यह केवल इन साधुओं का ही प्रश्न नहीं है या अमुक धर्मादे के काम में विघ्न डालने का ही सवाल नहीं है। यह तो समग्र जनता का प्रश्न है और धर्मकार्य को सही दिशा में मोड़ देने का प्रश्न है। मुझे खुद को यह सव ढकोसला लगता है। इस प्रकार से तो मैं हर्गिज चन्दा नहीं होने दूँगा। अन्याय होते रोकना एक नागरिक के नाते मेरा कर्त्तव्य है।"

मैं यों कह रहा था, तभी एक साधु आगववूला हो कर वोल उठा—"मैं तुम्हें देख लूँगा कि तुम हमें चन्दा करने से कैसे रोकते हो ?"

यों कहकर वह दो-तीन दूसरे साधुओं को ले कर पुलिस सव-इन्स्पेक्टर की ओर चल दिया। वहाँ पहुँच कर उन्होंने अपने पास के सभी प्रमाणपत्र और रसीदवुकें वगैरह उनके सामने पेश किये होंगे। इसलिए पुलिस सव-इन्स्पेक्टर ने तुरन्त मुझे बुलाया और कहा—"भाई ! यह क्या कर रहे हो ? इनके पास इतने प्रमाणपत्र और रसीदवुकें हैं; फिर इन्हें चन्दा करने से रोकने की क्या जरूरत है ?"

"जरूरत तो इसलिए है कि मुझे इसमें शंका है कि यह चन्दा सचाई से नहीं हो रहा है। मैं भी छात्रालय, गौशाला वगैरह चलाता हूँ। संस्था के नियमों की मुझे जानकारी है। ऐसी संस्था को प्रतिवर्ष वार्षिक रिपोर्ट छपानी होती है। किसी कारण देर-सवेर हो जाय तो दो-तीन वर्षों में रिपोर्ट छपाई जाती है। परन्तु ये साधु कह रहे हैं कि हमारी गौशाला तो वर्षों पुरानी है; परन्तु हम रिपोर्ट नहीं छपाते। इसीलिए मैं इसे झूठ कह रहा हूँ। इन साधुओं से मेरा कोई द्वेष नहीं है। परन्तु इनसे मेरा नम्र निवेदन है कि ये ऐसे धंधे को छोड़कर दूसरा कोई पुरुषार्थ करें तो अच्छा! अगर ऐसा न करेंगे तो इस गाँव में चन्दा इकट्ठा करने से मैं तो अवश्य रोकूँगा। फिर भी आपको मेरे प्रति कोई कदम उठाना योग्य लगता हो तो मैं आपको उससे इन्कार कैसे कर सकता हूँ? परन्तु आपसे इतना जरूर कहूँगा कि आप इन साधुओं की अभी और ज्यादा जाँच-पड़ताल करेंगे तो आपको इनका दम्भ समझ में आए वगैर नहीं रहेगा; मेरा ऐसा विश्वास है।

पुलिस सब-इन्स्पेक्टर को मेरी बात में कुछ तथ्य मालूम हुआ। उन्होंने सभी साधुओं को बुलाया और उनके पास दूसरी रसीदबुकें या छपे हुए कागजात हों तो दिखाने का कहा। वे जब दिखाने लगे तो एक साधु की थैली में से दूसरे ऐसे अनाथाश्रम वगैरह के छपे हुए कागजात निकले। इस कारण पुलिस सब-इन्स्पेक्टर को शक हुआ कि शायद.......भाई की बात सच हो।

इसलिए उन्होंने अपने तरीके से उनकी जाँच करनी शुरू की। इन सब साधुओं में से एक साधु निखालिस दिल का था। उसने फौरन कह दिया— "साहब! आप हमें छोड़ दें। हम यह सब झूठ चला रहे हैं।.......भाई का कहना यथार्थ है।"

मैं तो उनके हृदय में सोया हुआ राम जगाना चाहता था। अब मुझे लगा कि पु० सब-इन्स्पेक्टर को अहिंसक ढंग से इसका हल निकाल ने के लिए कहना चाहिए। इसलिए मैंने पुलिस सब-इन्स्पेक्टर से कहा—"मुझे इन लोगों से किसी प्रकार का द्वेष नहीं है। पुलिस कानूनी कदम उठाए, उसकी अपेक्षा मैं चाहता हूँ कि हृदय-परिवर्तन और समाज-जागृति का कदम उठाया जाय। तथापि ये लोग चला कर आप (पुलिस) के पास आए हैं, इसलिए

मैं इसमें लाचार हूँ। फिर भी मेरी आपसे यह विनति है कि ये साधु अगर अपनी भूल स्वीकार कर लें और गाँव से वसूल किया हुआ पैसा लोगों को वापिस दे दें तो मैं नहीं चाहता कि इनके लिए पुलिस किसी प्रकार का फिर कदम उठाए।"

वे साधु भी कच्चे गुरु के चेले नहीं थे। वे भी अपनी जिद्द पर अड़े रहे। एक साधु तो अपनी भूल मान गया, लेकिन दूसरे साधुओं ने अपना अपराध स्वीकार नहीं किया। फलतः पु० सब-इन्स्पेक्टर ने बाकायदा उन पर मुकद्दमा दायर किया। मेरा विश्वास है कि अगर सभी साधुओं ने अपना अपराध कबूल कर लिया होता तो पु० स० इ० उन्हें कोर्ट में न ले जाकर जनता पर छोड़ देते। पर वे न माने सो नहीं माने।

अतः दूसरे दिन उन साधुओं को पकड़ कर सिपाही तहसील कार्यालय में ले गए। उन पर मुकद्दमा चला। अन्त में सभी साधुओं ने कोर्ट में अपना अपराध स्वीकार किया और कोर्ट से क्षमा मांगी। इस कारण न्यायाधीश ने दो मुख्य साधुओं को प्रत्येक को ७५-७५ रुपयों की सजा दी और छोड़ दिया।

साधुओं पर दण्ड होने पर मुझे विचार आया कि मैंने ऐसे कानूनी कदम उठाने की अनिच्छा प्रगट की थी, किन्तु वे स्वयं ही कानून की चपेट में आए; इसलिए मुझे इतने से संतोष मान कर रह जाना पड़ा कि 'जो कुछ हुआ, सो ठीक हुआ। इतने से ये लोग समझ जायेंगे।" मैंने इस बारे में विस्तार से पू० मुनिश्री संतबालजी महाराज को लिखा। उन्होंने मुझे लिखा कि "सरकारी राह से कोई कदम उठाने में हमारा विश्वास नहीं है। फिर भी अपराधी स्वयं अपने आपको निर्दोष सिद्ध करने के लिए कोर्ट का आश्रय ले तो इसमें हम निरुपाय है। जो प्रसंग तुम्हारे सामने आ पड़ा और उसमें तुमने अपना कर्त्तव्य निभाया, इससे सन्तोष होता है। परन्तु भविष्य में तुम्हारे लिए उपयोगी साबित हो, इस दृष्टि से एक चेतावनी देता हूँ कि साधुओं को सजा हो जाने के बाद वे समझ गए या समझ जायेंगे, ऐसा तुम्हें हुआ संतोष उचित नहीं है। क्योंकि हम तो अपराधी का हृदय-परिवर्तन ही चाहते हैं। इसलिए दण्ड मिलने से उन साधुओं में कुछ परिवर्तन हुआ हो, यह कल्पना ठीक नहीं की जा सकती।" मैंने उनकी यह चेतावनी शिरोधार्य की।

: २ :

कहीं जाल में फंस ही जाते !

[भारतवर्ष धर्मभावना से ओतप्रोत देश है। इसलिए यहाँ धर्म के अंचल में पलने वाले वेषधारी लोगों के प्रति समाज में भावुकता होना स्वाभाविक है। सच्चे धर्म का आचरण करके जब कि श्रमणों, ब्राह्मणों और साधु-संतों ने प्रतिष्ठा पाई है, तब धर्म के नाम से कमाई करने वाले धर्मध्वजी लोग धर्म को बदनाम करके जागृत जनसमाज में अप्रतिष्ठित भी हुए हैं। जैसे पुराने जमाने में ब्राह्मण निःस्पृहरूप से समाजसेवा करते थे, परन्तु अब उनमें में बहुत से ब्राह्मण अथवा साधु संस्था के नाम पर ढोंग रच कर बड़ा दुर्लाभ उठा रहे हैं। गायों के नाम से भी ऐसे ढोंग चलते हैं, रेल के डिब्बे में तो खूब चलते हैं। परन्तु ग्रामीण लोगों में थोड़ी-सी सूझ-बूझ और न्यायबुद्धि हो और ग्रामों के शुद्धिमंडलों के कार्यकर्ता जागृत हों तो ऐसे अनिष्टों को निकालते देर नहीं लगती। नीचे गायों के नाम से चन्दा करने वालों के खिलाफ अहिंसक प्रतीकार और उनके द्वारा की गई भूल के स्वीकार का एक प्रेरणाप्रद प्रसंग दिया जा रहा है।]

रात्रि के लगभग आठ बजे प्रार्थना करने की तैयारी चल रही थी। हम थोड़े से ग्रामजन विद्यार्थी-आश्रम में बैठे थे। इतने में तो वहाँ सहसा तीन व्यक्ति आए और कहने लगे—"जरा एक विद्यार्थी को हमारे साथ भेजेंगे ? हमें दूकान से नाश्ता लेना है।" हमने कहा—"खुशी से ले जाइए।" हमारा नरम दिल देखकर उन्होंने आगे कहा—"हम आश्रम के आदमी हैं। हमारी एक टुकड़ी नजदीक के कस्बे में है। हमें मुखिया पटेल से मिल कर संस्था के चंदे का काम निपटा कर दूसरी टुकड़ी के पास पहुँचना है। मुखियाजी का घर भी हमें बताइए !" मैंने बीच में ही पूछ लिया—"आपको उनसे क्या काम है ?" वे बोले—"हमें गौशाला के लिए चन्दा करना है और शीघ्र ही अपने गुरुजी (जो दूसरी टुकड़ी में हैं) के पास पहुँच जाना है।" संयोगवश मुखियाजी वहीं प्रार्थना के लिए आए हुए थे। उन्होंने कहा—"कहिये,

क्या काम है ?" उन भाइयों ने तुरन्त ही गौशाला की रसीद-बुकें, कागजात, संस्था की ऑथोरिटी का दस्तावेज, प्रमाण-पत्र, अनाज के खर्च की नोंध वगैरह साहित्य का वहाँ ढेर लगा दिया, और मानो आर्डर करते हों, इस प्रकार कहने लगे—"लीजिए, हमारा काम झटपट निपटाइए। धर्मादे का काम है। इस गाँव से हमें बहुत बड़ी आशा है।"

ये भाई जब यों बोल रहे थे, तब मैं उनके सामने ताक रहा था। मुझे उनकी आवाज में सचाई का स्वर नहीं लगा। मुझे उनकी बातों में फरेब की गंध आई। इसीलिए मेरे पास जो दूसरे भाई बैठे थे, उनसे मैंने कहा—"इन भाइयों को भलीभाँति जाँचे-परखे बगैर चन्दा नहीं दिया जा सकता। मेरे मन में शंका है कि ये भाई पेट भरने के लिए ऐसा धंधा करते हैं।" मुखियाजी बेचारे बहुत भोले थे। वे बोले—"भाई, तुम तो हर एक बात की तह में उतर कर इस तरह बारीकी से टटोला करते हो। जो भी हो, हमें इससे क्या मतलब ? हमें तो धर्मादे के नाम से देना है न ! थोड़ा-बहुत दे दें, ताकि ये बेचारे रात को समय पर.................गाँव में पहुँच जांय !" मैंने जरा अधिक आग्रह पकड़ा। मेरे पास बैठे हुए एक-दो भाइयों का भी मुझे समर्थन मिला। चन्दा करने के लिए आए हुए भाइयों की जांच-पड़ताल कर लेने की उनकी भी इच्छा हुई। उनके पास बिना रसीद के अनाज वसूल करने की एक किताब मिल जाने से हमारी शंका और पक्की हो गई। हमारे दिल पर यह छाप पड़ी कि ये लोग झूठे हैं। मैं उन भाइयों से पूछने लगा—"क्या सचमुच यह गोशाला मौजूद है ? जो कुछ हो, सच-सच बता दो।" मगर तुरन्त तो वे माने नहीं। थोड़ा-सा दबाने पर उनके जवाब में जरा ढीलापन आने लगा। बात-बात में उनमें से एक भाई बोल उठा—"अब जाने दो न, माई-बाप ! आपको कुछ भी न देना हो तो हम चले जायेंगे।" इस भाई के मुँह से 'माई-बाप' का शब्द सुनते ही हमें लगा कि ये दीनता के स्वर कहने वाले..........कौम के होंगे ! इसलिए हममें से एक भाई उन्हें बाहर ले गए और समझाने लगे। समझाहट के बाद एक भाई ने कबूल किया—"भाई साहब ! हमने यह खोटा काम किया है। हमें आप छोड़ दें।" अब तो मानो कलई खुल गई। उस भाई ने उनसे पूछा—"तुम किस गाँव के हो ?

कितने रुपये इकट्ठे किये हैं ? तब उसने बताया कि "हम..........नगर में रहते हैं। हमारे बुजुर्ग.......कौम के होंगे। परन्तु वर्तमान में हम सलावट का धंधा करते हैं। उसमें निर्वाह कम होता है तो हम भीख माँग कर भी उसकी पूर्ति करते हैं। अब तक हमने लगभग ५०) रुपये वसूल किए हैं।" यह भाई इस प्रकार कह रहा था, तब उसके दो साथी उसके सामने आँखें तरेर रहे थे। परन्तु उसने तो सारी बात सच-सच कह डाली। इस बात से हमें संतोष हुआ।

इसके बाद सभी भाई मकान के अन्दर आए और जो भाई नहीं समझ रहे थे, उन्हें समझाने की और सच्ची बात कह डालने की भूमिका तैयार की। अन्त में, दो-तीन घण्टे बाद उन दोनों ने भी अपनी भूल स्वीकार की और कहा—"हम सबने इस धंधे के लिए अपने नाम बदल लिये थे।" इस जांच-पड़ताल के बाद वे तीनों डर के मारे कांपने लगे।

हममें से एक भाई का आग्रह था कि इन्हें पुलिस के हवाले किया जाय। तब मैंने कहा—"सरकार की अपेक्षा जनता महान् है। जनता को इस बारे में न्याय देना चाहिए।" अतः..........गाँव के शुद्धिमंडल के सदस्यों में से कुछ को बुलाया। इतने में उन तीनों में से एक तो रोने लगा। हमने उन्हें विश्वास दिलाया कि हम तुम्हें जेल नहीं भेजेंगे। मगर तुमने जो यह अपराध किया है, उसके लिए तो तुम्हें गाँव के लोगों (शुद्धि-मंडल) के आगे सच-सच कहना ही पड़ेगा। उन्होंने कहा—"अहमदाबाद में एक बावा रहता है। वह दो-चार गायें रखता है। आश्रम व गौशाला के नाम से हम जो कुछ चन्दा वसूल करके ले जाते हैं, उसमें से आधी रकम वह लेता है, आधी हमें देता है। यह गौशाला सच्ची नहीं है।" हमने उनसे चन्दे का पक्का हिसाब माँगा तो उन्होंने अपने पास इकट्ठे किये हुए ५२) रु० हमारे सामने रख दिये। अब इसके लिए क्या करना चाहिए? इस पर विचारविमर्श करते हुए हमें सूझा कि ये लोग अपने पास ओथोरिटी पत्र आदि जो भी कागजात हों, उन्हें फाड़ डालें। वसूल किये हुए ये रुपये हमें नहीं लेने चाहिए। वे स्वयं चाहें तो गायों के नाम से लाये हैं, इसलिए अपने हाथ से ही बिनौले ला कर गायों को चरने के लिए डाल दें। तथा अपनी भूल को स्वीकार करके

आयन्दा ऐसा नहीं करने का वचन दें। इतना हो जाय तो हम समझते हैं यह प्रश्न भलीभाँति हल हो गया।"

उक्त तीनों भाइयों को उपर्युक्त तरीके से समाधान की बात बताई, वे इस प्रकार करने के लिए खुशी से तैयार मालुम हुए। उनके मन में जेल जाने का जो डर था, वह निकल गया। उन्होंने कहा—"आपके कहे अनुसार करने के लिये हम राजी हैं। सिर्फ हमें यहाँ से अहमदाबाद तक के किराये के दस रुपये दे दें तो अच्छा हो।" हमें उनकी बात न्याय-युक्त लगी। हमने दस रुपये उनके पास रहने दे कर बाकी के ४२) रु० उन्हें दिये, जिनके बिनौले वे स्वयं खरीद कर ले आए और गायों को चरने के लिए डाल दिये। अपने पास जो रसीद-बुकें वगैरह थीं, वे सब फाड़ डालीं और अपनी भूल के लिए माफी माँगी। लिखितरूप में इकरार किया।

इसके पश्चात् उन्हें गाँव की ओर से भोजन कराया गया, और सच्ची हितशिक्षा दे कर विदा किया। जाते समय वे भी खुश होकर बोले—"हम आपका बड़ा उपकार मानते हैं। नहीं तो, हम इस खोटे रास्ते से वापिस न मुड़ते और कहीं न कहीं जाल में फंस जाते!

गाँव के लोगों को लोक-जागृति का परिचय मिला और ऐसी घटना से एक नया पाठ सीखने को मिला।

: ३ :

अब गायों के नाम से चन्दा नहीं करूंगा!

[समाज में आज चारों ओर चन्दा लेने के लिए चाहे जो आदमी चला आता है। धर्म के नाम से भारत में यह पोल चल सकती है। मगर सच्चे समाजसेवक के सामने ऐसे प्रसंग बनें, उन्हें वह कैसे सह सकता है? गोशाला के नाम से चन्दा इकट्ठे करने वाले एक भगवां वेषधारी साधु को एक जनसेवक ने कैसे ललकारा और रोका; यह नीचे की सच्ची घटना बता रही है।]

"गो-सेवा के लिए सहायता करना तो प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है। गाय हमारी माता है। वह भूखी-प्यासी रहे, कसाई के हाथों में जाय, यह हम कैसे सहन कर सकते हैं? इसलिए जो-जो गो-प्रेमी हों उन्हें इस गौशाला के चन्दे में पैसे देने चाहिए।"

इस प्रकार के उद्गार एक भगवांधारी साधु रेल में बैठे हुए यात्रियों से खूब जोर-शोर से प्रगट कर रहे थे। स्वयं अत्यन्त विद्वान् और बड़े गो-सेवा-प्रेमी हों, ऐसी बातें लोगों से कह रहे थे। इसके साथ ही रसीद-बुकें, खरें, प्रमाण-पत्र वगैरह सभी वस्तुएँ बता कर लोगों के हृदय में अपनी सच्चाई का सिक्का जमा रहे थे। वे अपने साथ ताला लगी हुई एक सीलबन्द पेटी भी लाये थे, जिसमें पैसे डालने के लिए लोगों को कह रहे थे।

मैं भी उसी डिब्बे में बैठा था। मुझे लगा कि यह चन्दा सच्चा नहीं है। इसलिए मैंने उस साधु को अपने पास बुला कर पूछा—"क्या सचमुच यह गोशाला का चन्दा हो रहा है? मुझे तो आपके इस काम में शक है!" यह सुनते ही साधु भभक उठा और जोर-जोर से बोलने लगा—"यह तो पवित्र सेवा का काम है। ऐसे गौशाला के काम में तुम दस्तंदाजी करके नुकसान पहुँचा रहे हो। इसलिए भगवान् तुम्हारा भला नहीं करेगा; आदि" डिब्बे में आस-पास में बैठे लोग भी मुझे नफरत की निगाहों से देखने लगे। 'ऐसे शुभ कार्य में तुम्हें क्यों सिरपच्ची करनी पड़ रही है?' यों कह कर एक बूढ़े ने तो मुझे चुनौती दे दी। पर मैं तो अपनी बात नम्रता से कहता रहा। मैंने उस साधु को सच्ची बात समझाने का प्रयत्न किया। मैंने उससे साफ-साफ कह दिया—"मैं इस झूठ-फरेब को चलने नहीं दूंगा। इसलिए आपको सच्ची बात कहनी ही पड़ेगी। आप सच-सच कह दीजिए कि आप यह चन्दा किसके लिये कर रहे हैं?" इस पर वह साधु ढीला पड़ा और बात-बात में पकड़ाया। उसकी बातों से साफ जाहिर हो गया कि वह अपने लिए चन्दा इकट्ठा करता है। मैंने जरा कठोर हो कर उससे कहा—"बोलो; अब क्या करना है?" वह साधु समझ गया कि इस आदमी के सामने अब मेरा दाव नहीं चलेगा। इसलिए अन्त में उसने कहा—"तुम कहो, वैसे मैं करने को तैयार हूँ।"

मैंने कहा—"मैं आप पर कानूनी कदम तो उठाना नहीं चाहता। मुझे तो आपके हृदय को जगाना था। अब आप स्वयं ही अपनी भूल सुधारना चाहते हैं तो मैं कहूंगा कि चन्दे इकट्ठे करने के ये सब साधन (साहित्य) आप अपने हाथ से ही फाड़ डालें और भविष्य में नीति की कमाई से पेट भर कर जीयेंगे तो भगवान् आपका भला करेंगे।"

मेरे इन उद्‌गारों को सुन कर साधु को संतोष हुआ और उसने अपने हाथों से रसीदबुकें, किताबें वगैरह चन्दे का साहित्य फाड़ डाला और मुझे कहा—"आज से मैं गायों के नाम से चन्दा करके पेट नहीं भरूंगा; आप विश्वास रखें।" अब तो मुझे उस पर विश्वास रखना ही चाहिये। अगला स्टेशन आया तब वह स्वयं मेरे डिब्बे से उतरे। मेरे से अन्तिम 'जय-जय' करके चल पड़े।

उसी डिब्बे में जो बूढ़े दादा मेरे पर बरस पड़े थे, उन्हें अब सच्ची बात समझ में आई और अत्यन्त गद्‌गद होकर मेरे पास आये और मेरे पैरों में पड़ कर कहने लगे—"भाई! तुम्हारी बात सच निकली। गायों के नाम से चन्दे की बात झूठी थी। तुम सरीखे सच्चे आदमी ही ऐसे झूठ-फरेब को नहीं चलने देते। बापजी! हमारे गाँव में आओ न! तुम सरीखे मनुष्य मिलने मुश्किल हैं। तुम हमारे गाँव में आओगे तो तुम्हारे खर्च के लिये जो कुछ पैसों की जरूरत होगी, हमारा गाँव तुम्हें देगा। अतः किसी समय हमारे गाँव में जरूर आना।"

मैंने उनका हाथ पकड़ कर उन्हें उठाया और कहा—"दादा! मैं तो एक साधारण आदमी हूँ। आप जैसे सत्य-प्रेमी वृद्ध बुजुर्ग मुझ सरीखे छोटे आदमी के पैरों में पड़ें, यह शोभा नहीं देता। आपकी भावना बहुत उत्तम है। मैं तो एक अदना सेवक हूँ। भगवान् की इच्छा होगी तो किसी समय मैं आपके गाँव में आने का प्रयत्न करूंगा।"

अब तो उस डिब्बे में बैठे हुए सभी लोग सच्ची बात समझ गये। इसलिए इस साधु का परिवर्तन देख कर अत्यन्त हर्ष प्रकट करने लगे।

: ४ :

सवाल तो पूरा करूंगा ही !

[एक युग में ब्राह्मणवर्ग निर्लोभी, निःस्पृह हो कर समाज से जो कुछ मिलता, उसे ले कर जीता और समाज के हितचिंतन में रत रहता। समाज में कोई भी विकृति घुसती तो उसे दूर करना वह अपना कर्तव्य समझता था। उस युग में समाज खुशी से उनके जीवननिर्वाह की चिन्ता करता था। समाज को वह बोझ-रूप नहीं लगता था। पर आज उसी ब्राह्मण वर्ग में ऐसी विकृति आई है कि वह स्वयं आलसी और गैरजिम्मेदार बन गया है, समाज में अनीति का चेप लगाता है। यद्यपि इस जमाने में जन-सेवकों की प्रेरणा से जनता भी जागृत हो गई है, इसलिए रुपये मांगने के सवाल करने वालों को वह योग्य पाठ पढ़ा देती है। नीचे का प्रसंग ऐसे ही एक सवाल करने वाले का है, जिसे एक सेवक ने सुन्दर बोधपाठ दिया है।]

"सवा पाँच रुपये का मेरा सवाल है। है कोई दिलदार, मर्द, भगवान् का लाल ! भगवान् तुम्हारा भला करेगा।"

उपर्युक्त वाक्य बोलते-बोलते एक सवाल करने वाले महाराज गाँव में घूम रहे थे। मैंने उन्हें देखा तो मुझे लगा कि इस बुद्धिवादी युग में इस प्रकार आलसी और गैरजिम्मेवार हो कर इनका सवाल करते फिरना उचित नहीं है। ऐसे लोगों को बिना मेहनत के पैसे दे कर समाज इनके आलस्य और अनीति का समर्थन करता है; यह न्यायोचित नहीं है। मैं उन सवाल करने वाले महाराज से मिला और उनसे निवेदन किया—"आप इस तरीके से रुपये माँगने का सवाल न करके गाँव में घर-घर जाकर मुट्ठी-चुटकीभर जो कुछ भी मिले; ले लें। यद्यपि यह धंधा भी अच्छा नहीं है; क्योंकि इसमें आपके आलस्य का पोषण होता है। प्रत्येक मनुष्य को मेहनत करके खाना चाहिये। आप समाज का कोई भी हितकर काम किये बिना माँगते हैं, नीति की दृष्टि से यह उचित नहीं है।"

वे मेरी बात पर ध्यान न देकर गाँव में फेरी लगाते रहे। मैंने और दूसरे एक-दो भाइयों ने उन सवाल रखने वाले महाराज से फिर कहा—"मेहरबानी करके आप इस प्रकार फेरी लगाना बन्द करें, यही उचित है। गाँव इसे अब सहन नहीं कर सकेगा।"

इस पर वे अधिक उग्र होकर बोलने लगे—"मैं शुद्ध ब्राह्मण हूँ। यह तो मेरा धन्धा है। मुझे इससे कौन रोक सकता है? मैं तो सवाल रखूँगा ही। मैं इस गाँव के किनारे मर जाऊँगा, पर सवा पाँच रुपये तो ले कर ही रहूँगा। तुममें जितना जोर हो उतना लगा लो।" मैं उनके उग्र क्रोध के विरुद्ध मुझसे जितना धैर्य रखा जा सकता था, रख रहा था। एक ओर से मैं उन्हें नम्रता-पूर्वक समझा रहा था, और दूसरी ओर से मैं ग्रामजनों को भी निवेदन कर रहा था कि अब हमें ऐसे सवालों को पूरा करना बन्द करना चाहिए। इसी में ही दोनों का हित है। इन महाराज को भी मेहनत करके जीने का मौका मिलेगा और हमें भी सच्चे धर्मात्माओं को देने का अवसर प्राप्त होगा।"

ये सब बातें सवाल रखने वाले महाराज के सामने हो रही थीं, इसलिए कुछ समय बाद धीरे-धीरे उनका पारा ठंडा पड़ने लगा और उनके उतावले कदम भी धीमे पड़ने लगे। मैंने उनसे कहा—"आपके लिए यहीं भोजन की व्यवस्था हो जायगी। अतः मेरी प्रार्थना है कि आप इस प्रकार फेरी लगाना बन्द करके भोजन कर लें।"

अब मेरी बात उनके गले उतर गई और उन्होंने सवाल के लिए फेरी लगाना बन्द कर दिया, तथा भोजन करना स्वीकर किया।

इसके बाद हमारी परस्पर अनेक बातें खुले दिल से हुई। उनके हृदय को संतोष हुआ, प्रतीत हो रहा था। उन्होंने भोजन किया और हम सबको 'जय-जय' करके गाँव से विदा हुए।

: ५ :

बेटरी की नीलामी

[शुद्धिप्रिय मानव चाहे जहाँ रहता हो, वह अपनी शुद्धि का चेप लगाए बिना नहीं रहता। ऐसा शुद्धि का आग्रही मनुष्य अपनी नजरों के सामने कहीं भी होती हुई अशुद्धि को चलने नहीं दे सकता। ऐसे शुद्ध व्यक्ति के साधन भी शुद्ध होते हैं; इसमें तो कहना ही क्या! नीचे का प्रसंग ऐसे एक शुद्धिप्रिय मनुष्य के निमित्त से हुआ है, वह बहुत ही आशास्पद है।]

"लो यह बेटरी! मनोहर बेटरी, बेजोड़ बेटरी! लेनी है किसी को? बोलो!" तुरन्त एक व्यक्ति बोल उठा—"मेरे चार आने।" बेचने वाला बोला—'जा रही है, पानी के मोल में यह बेटरी, मनोहर बेटरी, सुन्दर बेटरी! बेजोड़ बेटरी! चार आने एक····चार आने दो····जा रही है यह! बोलो, कोई आगे बोलो····।"

इस प्रकार नीलाम करने वाले और बोली बोलने वाले रेलयात्रियों के बीच रस्साकस्सी चल रही थी। जिस गाड़ी के डिब्बे में यह नीलामी चल रही थी, उसी डिब्बे में मैं बैठा था। मैंने नीलाम करने वाले भाई को मधुर किन्तु मजबूत आवाज में कहा—"यहाँ आओ भाई! यहाँ आओ।" नीलाम करने वाला जरा सहम गया और तुरंत मेरे पास आ कर बोला—"क्या बात है?" मैंने कहा—"यह काम अच्छा नहीं है। इसमें तुम लोगों को ठगते हो!"

नीलाम करने वाला कोई भी दलील किये बिना तुरंत बोला—"तो लो, मैं जाता हूँ। मैं आपकी बात समझ गया हूँ। बोलो, और कुछ?" मैंने उसे जरा प्रेमभरे शब्दों में कहा—"तुम जवान आदमी हो। कमाने-खाने के दूसरे अच्छे रास्ते हों, तब तुम सरीखे जवानों को ऐसा खोटा रास्ता क्यों लेना चाहिये? मेरी बात तुम्हारे गले उतरती हो तो आज से नीलामी का यह धंधा बंद करो।" वह बोला—"शंकरदादा को जैसे कराना होगा, वैसे करायेंगे।" यों कह कर वह भाई चल दिया।

डिब्बे में बैठे हुए तीन भाई फौरन मेरे पर बरस पड़े—"बेचारा अपनी रोटी कमा खाता था। तुम्हारा इसने क्या बिगाड़ा था? तुमने इसे रोका, यह ठीक नहीं किया।" मैं बोला—"भाइयो! सोचो जरा। चाहे जिस तरीके से रोटी कमाना ठीक है?"

इतने में तो अनेक भाई बोल उठे—"इस भाई की (मेरी) बात सही है। ऐसे नीलामी के धंधे में इनाम के लोभ से अनेक लोग फँस जाते हैं। इस भाई ने तो ऐसे मौके पर रूढ़िग्रस्त मनुष्यों से डरे बिना अपना कर्तव्य अदा किया है।"

तभी मानो सक्रिय जवाब दे रहा हो, इस प्रकार से उस चार आने की बोली से शुरूआत करने वाले युवक ने तुरंत प्रतिज्ञा ली—"ऐसी नीलामी में बोली बोलने की मैंने जो भूल की थी, उसे मैं मिटा रहा हूँ और आयंदा कभी ऐसी नीलामी में बोली बोल कर ऐसे अप्रामाणिक पेशे को उत्तेजन नहीं दूँगा।"

उन तीनों व्यक्तियों को अब बोधपाठ मिल चुका था।

: ६ :

नीलाम वाला

[हमारे देश में लोग जरा से लोभ में आ कर अनीति और अप्रामाणिकता को प्रश्रय दे देते हैं। नीलामी कम पैसे देकर कीमती चीज लेने की सट्टे की ही एक किस्म है। इसमें बोली बोलने वाला और नीलाम करने वाला दोनों अनीति में लिपटते हैं। परन्तु जहाँ समाज का हित-चिन्तक मनुष्य बैठा हो, वहाँ वह इस अनीति को कैसे देख सकता है? एक नीलाम करने वाला समाजसेवक के प्रतीकार से कैसे समझ जाता है? यह निम्नोक्त प्रसंग बता रहा है।]

"बोलो, यह सुन्दर वस्तु किसी को लेनी है? सस्ती, सुन्दर और मनपसंद है। बोली बोलने वाले को इनाम भी दिया जायगा। बोलो, जल्दी बोलो!"

रेल के डिब्बे में एक नीलाम वाला चीजें निकाल कर वताने लगा और यों वोलने लगा। कुछ ही देर में तो डिब्बे में वैठे हुए मुसाफिरों की ओर से वोली शुरू हुई—दो रुपये····ढाई रुपये····तीन रुपये। इस प्रकार नीलाम करने वाले के साथी वढ़ते जाते और वह उन्हें इनाम देता जा रहा था। इस प्रकार इनाम की जमघट देख कर एक युवक ललचाया। उसने भी वोली वोलनी शुरू की। धीरे-धीरे इनाम की रकम भी वढ़ती गई और नीलाम की वोली की रकम भी वढ़ने लगी। इस वोली वोलने वाले युवक की जेव में लगभग २३) रु० थे। नीलाम वाले ने सभी वस्तुएँ निकालते-निकालते एक हाथ-घड़ी निकाली। सवसे प्रथम उसका साथी वोला—१५) रु०। यह युवक वोला—"१६) रु० मेरे।" इसलिए नीलाम वाले का साथी आगे बोलना बन्द हो गया। इससे नीलाम वाले ने उस युवक को दो रुपये इनाम के दिये। युवक खुश हो रहा था। इस वेचारे को कहाँ पता था कि अभी मैं ठगा जाऊँगा।

अव नीलाम वाले ने हाथघड़ी के साथ और दो-तीन चीजें रखीं। उसका वह साथी वोला—"इस माल के २०) रुपये।" अतः वह युवक वोला—"२१) रुपये मेरे।" अव वह साथी आगे नहीं वढ़ा। नीलाम वाले ने कहा—"सुन्दर सस्ता माल और पैसे कलदार! वोलो, किसी को आगे वढ़ना है। वढ़े सो पावे! २१) रु० एक, २१) रु० दो, और इक्कीस रुपये तीन। निकालो रुपये।"

उस युवक को थोड़ी देर तक तो ऐसे लगा कि हाथघड़ी हाथ लगी; परन्तु २१) रु० दे देने के वाद उसका चेहरा उतर गया। उसके पास अव ज्यादा पैसे वचे नहीं थे। किसी काम से जा रहा होगा। मैं डिब्बे में ऊपर की स्लीपर पर सोता-सोता यह देख रहा था। मुझे लगा कि यह युवक घवरा रहा है। अतः मुझे इसे नैतिक मदद करनी चाहिये। इस नीलाम वाले को कुछ समझाना चाहिये। मैंने नीलाम वाले को बुलाया और कहा—"तुम इस प्रकार का धंधा करके लोगों को ठगते हो। तुम्हें ऐसा न करके दूसरा कोई अच्छा नैतिक धंधा करना चाहिए।" परन्तु उसने मेरी वात का विरोध करते हुए कहा—"मैं कहाँ लोगों को ठगता हूँ? मैं तो वस्तु दे कर पैसा लेता हूँ।

इसमें मेरा क्या दोष ? जिसे लेना हो ले।" पर मैं अपनी बात पर अड़ा रहा। कहने लगा—"तुम चालाकी करके अपने साथी से बहुत ऊँची बोली बुलवाते हो। इसमें नया और भोला आदमी ठगा जाता है। तुम्हें इस युवक से अपना माल वापिस लेकर उसे रुपये दे देने चाहिये।"

यों हमारी बातें हो रही थी, इतने में तो गार्ड आ गए। गार्ड को देख कर उसने उन्हें देने के लिये दो रुपये जेब से निकाले; परन्तु गार्ड ने लिये नहीं। मैंने गार्ड को उस भाई के नीलामी के धंधे की बात समझाई और यह भी कहा कि इस युवक ने माल के २१ रु० बोली बोल कर दिये हैं, वे इसे इस युवक को वापिस दे देने चाहि।"

मेरे पास बैठे हु दो-तीन भाइयों ने विरोध किया—"क्या उस समय यह नहीं जानता था ? उस वक्त तो इनाम लेने दौड़ा था न !"

मैंने उन्हें इस युवक से हुई भूल की बात समझाई कि "यह बेचारा पहले तो जोश में आ कर लोभ में फंस गया था। पर अब यह दुःखी है। अब इसके पास पैसे नहीं बचे। ऐसे समय में हमें इसकी मदद करनी चाहिये; और इस नीलाम वाले को भी समझाना चाहिए कि ऐसा खराब धन्धा न करे।"

मेरी बात गार्ड के गले उतरी। उसने नीलाम वाले से कहा—"इस युवक को पैसे वापिस लौटा दो, यही तुम्हारे लिए हितकर है।" उसने कहा—मैंने इसे इनाम में काफी पैसे दिये हैं। फिर भी आप कहते हैं तो मैं इनाम के पैसे काट कर इसे अपनी रकम वापिस दे सकता हूँ।"

अन्त में गार्ड ने उस युवक को अपनी भूल समझाई और इनाम में मिले हुए तीन रुपये काट कर बाकी के १८) रु० उसे वापिस दिलाये और नीलाम वाले का माल भी वापिस उसके सुपुर्द कराया।

युवक ने अपनी भूल कबूल की और हृदय से सन्तोष व्यक्त किया। नीलाम वाला भी अगला स्टेशन आते ही उतर पड़ा और चल दिया।

: ७ :

क्या कार्यकर्ता ऐसा होता है ?

[समाजरचना का चाहे जैसा कार्य हो, इसमें पड़े हुए कार्यकर्ता को कदम-कदम पर सावधान रहना चाहिए। उसका एक भी कार्य ऐसा नहीं होना चाहिए, जिसका समाज पर उल्टा असर पड़े। धन और सदाचार के बारे में तो उसे अत्यन्त प्रामाणिक रहना चाहिए। अगर वह कौटुम्बिक जीवन में खर्चीले स्वभाव का होगा तो उसका प्रभाव सामाजिक जीवन पर पड़े बिना नहीं रहेगा। मगर ऐसे कार्यकर्ता को प्रौढ़ कार्यकर्ता की सच्ची सहानुभूति और चेतावनी मिले तो उसका सोया हुआ राम एक दिन अवश्य जाग जाता है। नीचे का प्रसंग इस बात का साक्षी है।]

"भाई! तुम इस प्रकार से खर्च करते हो और पानी की तरह पैसा बहाते हो; क्या यह उचित कहा जा सकता है? मैंने संस्था के काम में तुम्हारे द्वारा पैसे के घोटाले की बात सुनी है। तुम्हारे एक हितैषी होने के नाते मैं तुम्हें यह बात कह रहा हूँ। तुम इस तरह अप्रामाणिक तरीके से चलोगे तो तुम्हारी इज्जत को बड़ा धक्का लगेगा। तुम मेरी बात पर शान्त चित्त से सोचोगे तो तुम्हें वह सत्य लगेगी।"

इस आशय की बात एक छोटे से कस्बे में चल रही एक संस्था में काम करने वाले एक कार्यकर्ता से मैंने कही। उसका स्वभाव बहुत ही खर्चीला और उड़ाऊ था। इसके कारण संस्था के धन में से भी अमुक गबन करने की उसकी आदत पड़ गई। मेरी बात उसके गले न उतरी। मैं उसे अनेक बार मधुर उलहना देता, पर वह उसे घोल कर पी जाता। शायद वह यों मानता था कि 'मुझे इस संसार में कौन पूछने वाला है?' जहाँ ऐसी मनोदशा हो और आदमी बुद्धिशाली हो फिर तो पूछना ही क्या? इसमें से झूठ और ठगी के दूषण पनपेंगे ही! इससे मुझे बहुत दुःख होता और मैं बार-बार स्नेहपूर्वक उसे कहा करता—"क्या कार्यकर्ता ऐसा होता है? तुम अपने बारे में स्वयं ठंडे दिल

से सोचना। अन्त में, जनता ऐसे अनीति के काम को सहन नहीं कर सकेगी। इसलिए तुम खुद पहले से सुधर जाओ तो अच्छा है।"

मेरे इस उपालम्भ का काफी अर्से तक कोई प्रभाव उस पर नहीं पड़ा। पर एक दिन उसकी कलई खुल गई और उस भाई पर एकदम आफत आ पड़ी। उसे कार्यकर्ता की नौकरी से छुट्टी मिल गई। अब क्या करूं? खर्च कैसे चलेगा? नौकरी भी छूटी और इज्जत भी गई। इस प्रकार की उलझन और भावी कार्य की उधेड़-बुन में वह पड़ा था। उसी समय मैं अचानक वहाँ पहुँच गया। यद्यपि मेरे कहने का प्रभाव उस समय तक उस पर बहुत ही कम प्रतीत हो रहा था। परन्तु अभी अचानक एक स्टेशन पर वह मिला। उसने बहुत ही नम्रतापूर्वक दोनों हाथ जोड़ कर प्रभुस्मरण किए और कहा- "भाई! आप कहते थे, वह बात बिलकुल सच निकली। जनता लम्बे समय तक ठगाती नहीं। मेरी जो-जो भूलें हुई हों, उन्हें माफ कर दीजिए। मैं आपके आशीर्वाद चाहता हूँ।"

मैंने कहा—"तुम्हें पहले मेरी बात समझ में नहीं आई थी, वह अब समझ में आ गई, यह अच्छा हुआ। मेरे हृदय में तुम्हारे प्रति अभी भी वही स्थान है। तुम मेरे भाई हो। तुम्हारे हाथों से अच्छे काम हों, इसमें मेरी शुभेच्छा ही है। तुम्हारी शुभनिष्ठा जागी, यह बात मेरे लिए बहुत ही आनन्ददायक और प्रेरक है। प्रभु तुम्हें अच्छे मार्ग पर जाने का बल दे।"

इस भाई ने मेरे प्रति बहुत ही भावना बताई। विदा होते समय उसके चेहरे पर आनन्द उभर रहा था।

: ८ :

यह नीतिभंग मैं कैसे सह लूं?

[धर्मदृष्टि से समाजरचना में जनता नीति-न्याय से कमाने वाली और समाज के लिए पोषक होगी। अगर जनता धर्म और नीति को छोड़ कर अर्थ की ओर दौड़ लगायेगी तो अन्त में समाज और राष्ट्र दोनों

निर्बल बनेंगे। जब लोग नीति और मानवता तक को तिलांजलि देने के लिए उद्यत हों, उस समय समाज और लोकतंत्रीय राष्ट्र के शुभचिन्तक कार्यकर्ता को तो इनमें सक्रिय रुचि लेनी चाहिए और अनीति के खिलाफ खुद को अहिंसक प्रतीकार करना चाहिए। कुछ लोगों के नीतिभंग के विरुद्ध एक कार्यकर्ता ने नैतिक साहसपूर्वक कैसे प्रतीकार किया, इस सम्बन्ध में समाजप्रेमी और राष्ट्रसेवक को निम्नोक्त प्रसंग प्रेरणा दे रहा है।]

"इस घास के ढेर की कीमत १८५) रुपये ! बोलो, किसी को आगे बढ़ना है। आगे बढ़े सो पावे ! बोलो, यह घास किसी को लेना है ? एकसौ पचासी एक, एकसौ पचासी दो·······।"

इस प्रकार दुष्काल के समय, जो सरकारी घास बच गया था, उसकी बोली बोली जा रही थी। घास की मूल कीमत तो बहुत अधिक होगी, बल्कि साधारण तौर पर भी उस घास की कीमत काफी ज्यादा थी। फिर भी यह क्या ? यह तो सिर्फ १८५) रु० में ही जा रहा है ! नीलाम के समय वहाँ बहुत से लोग जमा था, पर कोई इससे आगे बढ़ ही नहीं रहा था। मैं यह सब देख रहा था। कानाफूसी करते हुए बनियों और दूसरे लोगों का रुख समझते मुझे देर न लगी। मुझे लगा कि ये सब लोग पहले से ही आपस में मिल गए हैं और इस ऊँची कीमत के सरकारी घास को बहुत ही कम दामों में ले लेना चाहते हैं। इनके हृदय में नीति और धर्म का मूल्य कहाँ है ? मुझसे अब न रहा गया। मैंने गौशाला के नाम से बोली बोलने में सक्रिय रूप से हिस्सा लिया और बोली की रकम अब एकदम बढ़ने लगी। वे मिली-भगत वाले चिढ़े और अन्दर ही अन्दर बड़बड़ाने लगे। मुझसे उन्होंने इस आशय के वाक्य कहे—'सरकार के घर में अधिक पैसे जाने से तुम्हें क्या लाभ होगा ? सचमुच तुम्हें घास की जरूरत हो तो दूसरों की तरह तुम्हारे हिस्से में जितना आएगा, उतना घास तुम्हें दे देंगे। बोलो, है मंजूर ?"

मैंने उन्हें जवाब दिया—"भाइयो ! जरा सोचो तो सही; सरकार भी तो आखिर हम ही हैं न ! परन्तु इस बात को जाने दें तो भी मैं तुम्हारी अनीति के विरुद्ध लड़ रहा हूँ। नीलाम के समय उसके नियमों का तो पालन

होना चाहिये ; वे भी पालन होते दिखाई नहीं देते। अन्तिम बोली पूरी हो जाने के बाद आप बराबर हिस्से में बाँट लो, इसमें कोई हर्ज नहीं ; परन्तु अन्तिम बोली पूरी होने से पहले ही तुम आपस में मिलीभगत कर लो, यह तो सरेआम नीति भंग है। मेरे लिए घास में से हिस्सा बाँटने का सवाल नहीं है, परन्तु सवाल है खुल्लमखुल्ला होते हुए नीतिभंग को रोकने का ! मुझसे यह नीति भंग कैसे सहा जा सकता है ?"

इसके बाद वे सब भाई चुप हो गए। योग्य तरीके से नीलामी होने पर थोड़ी ही देर में तीन सौ पचपन रुपये तक बोली हुई। मेरी सीमा अब पूरी हुई समझ कर मैं आगे बढ़ने से रुक गया। थोड़ी देर बाद सरकारी अधिकारी आए। राष्ट्रीय सरकार के सम्बन्ध में मैंने अपना मन्तव्य बताया और उन मिलीभगतवालों के द्वारा होने वाले नीतिभंग के विरुद्ध सक्रिय उदाहरण प्रस्तुत करने में मैंने जो नैतिक हिम्मत के साथ-साथ विवेकमर्यादा रखी, उसे सुनकर वे बहुत खुश हुए। वे बोल उठे—"हर जगह ऐसा हो तो हमारी सरकार और हमारा राष्ट्र कितने बलवान हों !

: ९ :

आपने टिकिट क्यों नहीं दी ?

[नीति का चेप किसी भी चेप के बजाय ज्यादा प्रभावकारी और शीघ्र होता है। अपराधी के भूल करने पर जो उसे पवित्र प्रेमभरी सहानुभूति दे सकता है, वही नैतिक दबाव से उस व्यक्ति की स्वतंत्रता के साथ-साथ उसकी अक्ल ठिकाने लगा सकता है। ऐसे नीतिनिष्ठ व्यक्ति की सीधी और सच्ची बात सब के हृदय में उतर जाती है। इसके प्रमाणस्वरूप नीचे का प्रसंग प्रस्तुत है।]

"मेरे पास टिकिट नहीं है, मुझे अब क्या करना चाहिये ?" ये उद्गार रेल के उसी डिब्बे में बैठे हुए एक भाई ने मेरे पास आ कर निकाले। मैंने उसे आश्वासन देते हुए कहा–"तुमने बहुत बड़ी भूल की। परन्तु घबराओ मत। अभी टी. टी. आएगा तब फौरन उससे टिकिट बनवा लेना।"

इतने में तो वहाँ टी. टी. आ पहुँचा। वह रेलयात्री उसके पास पहुँचा और उसे एक टिकिट वना देने के लिए कहा। टी. टी. ने कहा-"तुम मुझे सिर्फ दस आना दे दो और हाल्ट स्टेशन पर उतर जाना। मैं वहाँ स्टेशन पर रहूँगा ही। टिकिट लेने की कोई आवश्यकता नहीं है।"

वह यात्री टी. टी. को दस आने देकर खुश होता हुआ मेरे पास आया। मैंने पूछा—"कहो भाई ! क्या किया ?" उसने उत्साह में आकर कहा–"विना टिकिट के ही काम हो गया।" विना टिकिट के काम हुआ जान कर मुझे चिन्ता हुई कि यह वुरा हुआ। मैंने इस यात्री को पहले से ही स्पष्ट समझा दिया होता तो अच्छा रहता। परन्तु अभी प्रयत्न तो करना ही चाहिये। अतः मैंने उस भाई से कहा-"यह तो तुनने अपनी एक भूल को मिटाने के वदले उसी भूल को दोहरा दी। लोकतंत्रीय प्रणाली के स्वतंत्र भारत के एक नागरिक को क्या ऐसा करना चाहिये ? हमें तो अनीति को देशनिकाला देना है। तुमने तो उलटे अनीति को पोषण दिया है। अतः मेरी सलाह है कि तुम उस टी, टी. के पास जा कर टिकिट मांगो" यह सुन कर वह जरा क्षुब्ध हुआ। यद्यपि मेरे कथन का उसके दिल पर असर पड़ चुका था। संयोगवश टी. टी. वहाँ आ पहुँचा। मैंने उसे बुलाया और कहा—"आपको दस आने देने के बावजूद भी आपने इसे टिकिट क्यों नहीं दी ?" टी. टी. वेचारा घवराया। उसने कुछ भी उत्तर न दिया। थोड़ी देर बाद वह वोला-"अव आप कहो वैसे करूं !" मैंने कहा-"आपने दस आने लेकर भी इसे टिकिट न दी, इसलिए कानूनी दृष्टि से आप पर कदम उठाया जा सकता है। पर कानून की अपेक्षा समाज की नैतिकता तथा मानव-हृदय-परिवर्तन में मुझे ज्यादा विश्वास है। अब आप मेरी बात समझ गये होंगे। आशा है कि भविष्य में आप इस प्रकार का अनैतिक व्यवहार नहीं करेंगे।" टी. टी. मेरी वात समझ गया। उसने अपनी भूल तुरन्त जाहिर में स्वीकार की और दण्ड के ८ आने और लेकर उस यात्री को रसीद वना दी। सभी यात्रियों पर उसका अच्छा असर पड़ा। वे खुश हुए। उस यात्री को आठ आने अधिक देने से कुछ दुःख जरूर हो रहा था, यों मुझे प्रतीत हुआ। पर इसे मैंने अनिवार्य धर्म माना।

अब वह टी. टी. 'जय-जय' करके विदा हुआ। हम सबके हृदय नीति की इस विजय से नाच रहे थे।

: १० :

जनता की गाड़ी में बिना टिकिट बैठा जा सकता है ?

[आजादी मिलने के बाद भारत में जनता की सरकार आई है। इसका अर्थ यह नहीं है कि जनता चाहे जैसे व्यवहार करे! बल्कि जनता के अपने राज्य यानी लोकतंत्रीय राज्य में तो जनता पर प्रत्येक क्रिया में भलीभांति विवेकपूर्वक व्यवहार करने की जिम्मेदारी आ पड़ती है। ऐसी परिस्थिति में भारत का कोई भी नागरिक, भले ही वह राज्य कर्मचारियों में से हो, या सामान्य जनता में से हो; अगर वह राष्ट्र के कानून के विरुद्ध चलता हो तो वहाँ लोकसेवक की जिम्मेवारी हो जाती है कि ऐसे कानून-विरुद्ध चलने वाले के कटुवचन सह कर भी उसे नीति के मार्ग पर प्रेरित करे। स्वयं कोई कानूनी कदम न उठा कर प्रेम से उसे अपना कर्त्तव्य समझाए। नीचे का प्रसंग ऐसे नैतिक प्रयत्न की सफलता का नमूना है।]

"ये दिन भारत को आजादी मिलने के बाद के थे। स्वराज्य का आनन्द किस नागरिक को नहीं होता! पर कुछ लोग इस आनन्द में अपने कर्तव्य का भाव भूल बैठे थे। मैं आजाद भारत की रेलगाड़ी में बैठ कर वेरावल जा रहा था। धोला स्टेशन से गाड़ी छूटी तभी गार्ड टिकिट चेक करने आया। मैं जिस डिब्बे में बैठा था, उसी डिब्बे में मेरे पास एक गृहस्थ सपरिवार बैठा था। रहनसहन से वह बनिये का परिवार मालूम होता था। ऐसा भी जान पड़ता था कि यह अमीर घराने का सुखी परिवार है। गार्ड ने इस परिवार के मुखिया से टिकिट दिखाने को मांगी। फलतः उसने सभी टिकटें देखने को दीं। गार्ड ने पूछा—'तुम्हारे आदमी कौन-कौन हैं, जरा गिनाइए तो।"

इस गृहस्थ ने वहाँ बैठे हुए व्यक्तियों के अनुसार टिकिटें नहीं ली थीं। मुझे जहाँ तक स्मरण है, उन्होंने करीब तीन आदमियों की टिकिट नहीं ली थी। कुछ बड़ी उम्र के लड़कों की भी आधी टिकिटें ली थीं। फिर भी वह गृहस्थ रौब से आदमी गिनाने लगा। गार्ड उस गृहस्थ की चालाकी समझ गया। इसलिए उसने कहा—"आपने बहुत कम टिकटें ली हैं। इसलिए बाकी का चार्ज करना पड़ेगा।"

"मेरे से क्या चार्ज करेंगे? आप चुपचाप चले जाइए। नहीं तो, मैं आप पर मानहानि का मुकद्दमा चलाऊँगा। आपने मेरा अपमान किया है। इस तरह आप एक गृहस्थ परिवार को हैरान कर रहे हैं ? अब तो स्वराज्य आ गया है। स्वराज्य आने के बाद जनता अपनी गाड़ी का सुख भी नहीं पा सकती ? यह गाड़ी हमारे बापूजी की है!" इस प्रकार वह गृहस्थ और साथ ही उनकी पत्नी दोनों ही बोलने लगे और उस गार्ड को दबाने लगे। गार्ड ढीला पड़ गया।

मैं यह सब देख रहा था। मेरे दिमाग में स्वराज्य से पहले की हमारे देशवासियों के तप और त्याग की बातें घूम रही थीं; साथ ही स्वराज्य के बाद हमारे देशवासियों के ऐसे नीतिविरुद्ध व्यवहार की बात देख कर विरोधाभास मालूम होता था। मुझे वह गार्ड बहुत ही भला आदमी प्रतीत हुआ। मुझे लगा कि यह तो 'उलटा चोर कोतवाल को दंडे' वाली कहावत हो रही है। स्वतंत्र भारत के नागरिक को ऐसा व्यवहार शोभा नहीं देता। गार्ड को भी अब नैतिक हिम्मत रख कर इसे कुछ कहना चाहिये।"

मानो मेरे ही मन की बात गार्ड के मन पर प्रतिबिम्बित हुई हो; इस प्रकार वह बोल उठा—"इन आधी टिकिटों का तो ठीक, मगर आपने जो तीन व्यक्तियों की टिकिटें बिलकुल नहीं लीं, उनके पैसे तो देने ही पड़ेंगे।"

यों कहने पर वह गृहस्थ इधर-उधर की गप्पें हांकने लगा—"आइए! यहाँ बैठिये। आप कहाँ के निवासी हैं ? रेल्वे में कितने वर्षों से नौकरी कर रहे हैं ? टिकिट के बारे में बाद में हम सोचेंगे।"

मुझे गार्ड का तथा उस गृहस्थ का ऐसा रुख देख कर अत्यन्त दुःख हुआ। अपनी गाड़ी का ऐसा दुरुपयोग! इसे आँखों से देखते हुए मैं कैसे सह सकता

था ! मैंने तुरन्त ही सुसज्ज होकर उस गार्ड से कहा—"आपने टिकिट के चार्ज के पैसे क्यों नहीं लिये इनसे ? इन्होंने जितनी टिकिटें न ली हों, उतनी टिकिटों का पास बना कर इन्हें देकर पैसे ले लें और पूरी टिकिट के लायक लोगों की जितनी आधी टिकिटें ली हों उसके भी पैसे चार्ज करें। आप तो अपना कर्तव्य अदा करें।" और उस गृहस्थ का ध्यान खींच कर मैंने कहा—स्वराज्य आया है तो जनता की इस गाड़ी में हमसे बगैर टिकिट कैसे बैठा जा सकता है ? ऐसा नीतिविरुद्ध व्यवहार हमसे हो ही कैसे सकता है ?

परन्तु वे गृहस्थ और उनकी पत्नी मुझ पर आगबबूले हो कर बरसने लगे—"तुम हमारे बीच में पंचायती करने वाले कौन ? इसमें तुम्हारी गाँठ से क्या जा रहा था ? बहुत से लोग बिना टिकिट घूमते हैं। सरकार को इससे क्या घाटा पड़ जाता ? और हमें टिकिट जबरन लिवाने से तुम्हारे हाथ क्या लगेगा ? तुम अपना काम करो न ! हमारे काम में क्यों सिर मार रहे हो ?"

मैंने उन्हें प्रेम से कहा—मैं कोई आपका दुश्मन नहीं हूं। आपके भले के लिए कह रहा हूँ। आप जब से इसे जनता की गाड़ी कहते हैं तो गैरजिम्मेवार होकर ऐसा नीतिविरुद्ध आचरण कर सकते हैं ? आपको सबके टिकिट ले कर ही बैठना चाहिए था ! मुझसे आँखों देखते यह कैसे सहा जा सकता है।"

परन्तु मेरी बात तुरन्त उनके गले कैसे उतरती ! गार्ड को तो मेरी बात समझ में आ गई। इसलिए उसने तुरन्त रसीदबुक निकाली और जितनी टिकिटें नहीं ली गई थीं, हिसाब से उनके जितने पैसे होते थे, उनकी रसीद काट कर उस गृहस्थ के हाथ में थमा दी। अब तो उस गृहस्थ ने बड़बड़ाते हुए पैसे दिये।

गार्ड में मेरे द्वारा नैतिक समर्थन से हिंमत आ गई थी, उसका संतोष उसके चेहरे पर से लक्षित होता था। गार्ड 'जय-जय' करके विदा हुआ।

: ११ :

टिकिट तो आपको देनी ही चाहिये न ?

[जिस देश का नैतिक स्तर ऊँचा नहीं होता और राज्यकर्मचारी व्यापारी अथवा साधारण नागरिक सरेआम रिश्वत लेते-देते हों; वह देश चाहे जितना भौतिक समृद्धि वाला हो, वह पतन की राह पर है। किन्तु यदि धर्ममय समाजरचना में विश्वास करने वाले जनसेवक अपने सामने आ पड़े हुए प्रश्नों की पूरी छानबीन करके नीति और धर्म की सुरक्षा कर सकते हों तो वह देश नीति-धर्म से युक्त रह सकता है। इस की प्रतीति नीचे का उदाहरण कर रहा है।]

मैं ट्रेन में बैठ कर एक स्थान से दूसरे स्थान जा रहा था।..........गाँव में स्टेशन नहीं था। सिर्फ हाल्ट था। गाड़ी के खड़े होने के लिए एक साइनबोर्ड लगा हुआ था। गाड़ी छूटने वाली थी। इसलिए मैंने वहाँ टिकिट देने वाले गार्ड से टिकिट देने को कहा। गार्ड ने कहा—"गाड़ी में बैठ जाओ। स्टेशन आएगा, तब टिकिट दे दूंगा।"

मैं उन पर विश्वास रख कर तुरन्त गाड़ी में बैठ गया। स्टेशन आया। मैं उतरने को तैयार था कि वह गार्ड मेरे पास आया और टिकिट के पैसे मांगने लगा। मैंने पैसे दे दिये। उन्हें ले कर वह तुरन्त चलने लगे। मैंने कहा—"टिकिट कहाँ है ?" उन्होंने कहा—"अब तुम्हें टिकिट का क्या करना है ? तुम खुशी से जाओ।" मैं बोला—"टिकिट तो आपको देनी ही चाहिये न ?" वह गार्ड कहने लगा—"मैं कहता हूँ; तुम्हें अब टिकिट की जरूरत नहीं है। अब कोई तुम्हें रोकने वाला नहीं।" मैंने कहा—"नहीं; यह नहीं हो सकता। मैं टिकिट ले कर ही रहूँगा।"

परन्तु गार्ड ने सुनी-अनसुनी करदी और मेरी बात का कोई उत्तर न देकर चलने लगा। इसलिए मैंने उसे रोक कर कहा—"टिकिट तो आपको देनी ही पड़ेगी। मैं ऐसे नहीं जाने दूंगा। मुझे ऊपरी अधिकारी से आपकी शिकायत करनी पड़े, यह उचित नहीं लगता। अतः मुझे टिकिट दे ही दें।"

मेरी दृढ़ता और आग्रह देख कर गार्ड ने मन ही मन सोचा—'अब पोल नहीं चल सकती। इसे तो टिकिट देनी ही पड़ेगी।' इसलिए मुझे दूसरी कोई पुरानी टिकिट पकड़ा दी। इस टिकिट को अच्छी तरह देखी तो मैं ताड़ गया कि यह गार्ड टिकिट के पैसे हजम करना चाहता है। मुझ से यह अनीति कैसे सही जाती? अतः मैं तुरन्त बोल उठा—"देखिये, यह टिकिट दूसरी और पुरानी है। आप ऐसा करेंगे तो दुःखी हो जायेंगे। मुझे आपकी रोजी मारनी नहीं है। परन्तु जिस ढंग से आप अनैतिक व्यवहार कर रहे हैं, उस स्थिति में कभी न कभी आपकी रोजी छूट जायगी। आपको सरकार वेतन देती है, फिर ऐसा क्यों करते हैं? अगर मैं यह टिकिट ले जा कर अधिकारियों के सामने पेश करूं तो आपकी क्या दशा होगी?

मेरी बात सुन कर गार्ड एकदम ढीला पड़ गया और लल्लोचप्पो करने लगा—"लीजिए साहब! मैं आपको दूसरा पास बना देता हूँ। मुझे माफ करिये। लाइए, वह टिकिट वापिस दे दीजिए।"

उस टिकिट को वापिस लेने के लिए उस गार्ड ने बहुत ही आतुरता से नम्र रुख बनाया। इतने में तो दो-तीन स्टेशन मास्टर वहाँ आ पहुँचे। उस गार्ड की ऐसी दशा देख कर वे मुझे विनम्र शब्दों में कहने लगे—"जाने दो, साहब! भूल हो गई है। आयंदा ऐसा नहीं करेगा। आप वह टिकिट वापिस दे दीजिए।"

मुझे तो उन्हें थोड़ा चमत्कार बताना था। उन पर कानूनी कदम नहीं उठाना था। इसलिए मैंने गार्ड का उलहना देते हुए कहा-"मुझे तो आपके हृदय को झकझोरना था। कानून-कायदों की अपेक्षा मेरा आम जनता और हृदयपरिवर्तन में अधिक विश्वास है। आप सरकारी कर्मचारी होकर ऐसा नीतिविरुद्ध व्यवहार करें, यह मेरे जैसा जनसेवक कैसे सह सकता है? लो, यह टिकिट। आशा है, भविष्य में आप ऐसा कभी नहीं करेंगे।" यों कहते हुए मैंने वह टिकिट वापिस कर दी। पैसे दिये थे, उसके बदले उन्होंने मुझे पास बना दिया, और विदा होते समय कहने लगे—"आप विश्वास रखें, मैं भविष्य में ऐसा नहीं करूंगा। मुझे आज सुन्दर बोधपाठ मिल गया है।

: १२ :

आपने इस पटेल के पैसे से टिकिट क्यों ली ?

[धर्मोपदेशक का कार्य केवल धर्मोपदेश ही नहीं, धर्म की रक्षा करना भी है। आज तो धर्मरक्षा ही अनिवार्य और प्रथम नंवर का कार्य है। यह कार्य साधुसंस्था के क्रान्तिप्रिय सदस्य तथा साधुसंस्था के प्रति श्रद्धावान त्यागप्रिय और बंधनरहित गृहस्थाश्रमी भाई-बहनों का अनुबन्ध हो, वहीं प्रभावशाली हो सकता है। रिश्वतखोरी जैसे अधर्म को दूर कराने के लिए धर्मोपदेश के साथ-साथ धर्मरक्षा का सक्रिय कार्य कैसे हो सकता है ? इसे नीचे का प्रसंग स्पष्ट वता रहा है।]

"आपको टिकिट के पैसे खुद देने चाहिये थे, उसके वदले इस पटेल के पैसे से टिकिट क्यों ली ? आप सवको भत्ता तो मिलता ही है।" इस प्रकार का मैंने वस में बैठे हुए एक सरकारी अधिकारी से कहा। वह यह सुन कर क्षुब्ध हो गया।

वात ऐसी हुई कि जिस वस से मैं जा रहा था, उसी वस में दो-तीन अधिकारी और किसान बैठे हुए थे। जव कंडक्टर टिकिट देने आया, उस समय वह अधिकारी शुरूआत में टिकिट के पैसा देने लगा। पर एक वूढ़े किसान ने उनसे टिकिट के पैसे नहीं लेने का इशारा किया। और इन सवकी इकट्ठी टिकिटें ले कर उस वूढ़े किसान ने कंडक्टर को दस रुपये का नोट दिया और अधिकारियों की टिकिट के पैसे खुद चुकाये।

यह दृश्य देख कर मुझे लगा कि ऐसे मुख्य अधिकारियों द्वारा एक किसान के पैसे से टिकिट लेना एक प्रकार की रिश्वत है, अधर्म है। सरकारी कर्मचारियों को तो प्रत्येक प्रवास में सरकारी भत्ता मिलता है। यों वात छोटी-सी थी। किसान ने खुशी से पैसे दिये थे। पर रिश्वत सरीखे पाप की शुरूआत तो ऐसी छोटी ही होती है न ! मेरा धर्म अव यहाँ उन्हें अपने धर्मपालन का नम्र निवेदन करता था। इसलिए मैंने उपर्युक्त आशय की वात कही थी। प्रारम्भ में तो उनमें के एक अधिकारी ने कहा—"हम तो अपनी टिकिट के पैसे दे रहे

थे, परन्तु इस किसान पटेल ने वे नहीं लिये और उसने खुद ने दिये। इसमें हमारा क्या दोष ?"

मैंने कहा-"आपको ये पैसे देने का आग्रह रखना चाहिये था। आप सरीखे बड़े अधिकारियों को यह वात शोभा नहीं देती। इसलिए आप अव इस किसान को किराये के पैसे दे दीजिए। ये वेचारे तो कोई काम निकलवाने की गर्ज से आपको पैसे दें, लेकिन आप को नहीं लेने चाहिये। इसे रिश्वत ही कहा जायगा न ?"

मेरी यह वात पैसा देने वाले उस बूढ़े पटेल को अच्छी न लगी। उसने मुंह मचकोड़ कर कहा-"मैंने इन्हें कहाँ पैसे दिये हैं ?" दूसरे किसान ने कहा—'पैसे तो मेरे ही थे। लो, मैं वापिस ले लेता हूँ।"

मेरी वात समझ कर तीनों अधिकारियों ने जरा भी विरोध किये विना फौरन अपनी-अपनी टिकिट के पैसे मेरे सामने ही उस किसान के पल्ले में में डाल दिये। उन्हें ले कर किसान ने अपनी जेव के हवाले किये।

कुछ ही देरवाद मैं और वह किसान रास्ते के एक गाँव में वस से उतरे, तव उस बूढ़े किसान ने कहा-"भाई साहव ! क्या करें ? ऐसे अधिकारियों का हमें सम्मान करना पड़ता है। अगर ऐसा न करें तो हमारा काम झटपट नहीं करते। आपने उन अधिकारियों को खरी-खरी वात सुना दी, यह ठीक किया। अव हम ऐसा नहीं करेंगे।"

दूसरे कई दर्शकों ने मुझ से कहा-"आपने वहुत अच्छा किया। आयंदा ये सरकारी अधिकारी ऐसा करते हुए डरेंगे। ऐसी सावधानी हर जगह रखी जाय तो कितना अच्छा हो !

अन्त में, सवसे 'जय जय' करके मैं विदा हुआ।

: १३ :

यह पांचों की इकट्ठी टिकिट है न ?

[आज भारत में लोकतंत्रीय सरकार है। लोकतंत्रीय यानी जनता की सरकार। लोकतंत्रीय सरकार में जनता में से हर व्यक्ति

जिम्मेवार होना चाहिए। सरकार का नुकसान यानी हमारा नुकसान, ऐसी श्रद्धा जब तक जनता में नहीं होगी, तब तक सच्चा लोकतंत्र नहीं। नीचे का उदाहरण एक गैर जिम्मेवार हिंदुस्तानी एक निष्ठावान लोक सेवक की प्रेरणा से कैसे नैतिक जिम्मेवारी के मार्ग पर चढ़ जाता है, इसकी प्रतीति करने वाला है।]

"मैं सालंगपुर से धंधुका जा रहा था। मैं जिस बस में बैठा था, उसी बस में पाँच अनपढ़ किसान बैठे थे। जब बस-कंडक्टर टिकिट देने आया; तब उसने मेरे पास बैठे हुए पाँच किसानों में से एक को टिकिट दी और पैसे लिये पाँचों को टिकिट के। बोटाद आते ही वे किसान उतरने लगे। उस समय एक किसान ने मुझे वह टिकिट बता कर पूछा—"देखना भाई, यह पाँचों आदमियों की इकट्ठी टिकट है न ?" मैंने टिकट देखी तो वह सिर्फ एक ही व्यक्ति की थी। मैंने कहा—"यह तो एक ही व्यक्ति की टिकट है। कौन कहता है, यह पाँचों की है ? बसस्टेंड में यों पाँच व्यक्तियों की या दो-तीन व्यक्तियों की इकट्ठी टिकट कहीं नहीं दी जाती। तुमने पैसे पाँच व्यक्तियों की टिकट के दिये हैं तो बाकी की चार टिकटें तुम्हें उस कंडेक्टर से माँग लेनी चाहिये।"

"अब मरने दो न भाई साहब ? हमें तो यहीं उतरना है। मैंने तो तुम्हारी जानकारी के लिए ही यह टिकिट बताई थी कि यह एक की है या पाँच की ? हमें अब कुछ नहीं करना है। उसका रामधर्म वह जाने।" इस प्रकार वह किसान बोला। मैंने उसे समझाया—"तुमने मुझे टिकिट बताई, यह ठीक किया। पर तुम पाँचों में से चार की टिकिट के पैसे वह बस-कंडक्टर खा गया, वह किसके गये ? हमारी सरकार के ही न ? और हमारी सरकार यानी कौन ? हम ही न ? इसलिए इस तरह गैरजिम्मेवार होने से काम नहीं चलेगा। हमें कंडक्टर से और चार टिकिटें ले लेनी चाहिये।

उन्हें मेरी बात समझ में आ गई। वे अपनी जिम्मेवारी समझ कर टिकिट लेने के लिए उत्सुक हुए। मैंने कंडक्टर से कहा—"आपने ऐसा क्यों किया ? इन पाँच व्यक्तियों की टिकिट के पैसे लेकर आपने एक ही टिकिट कैसे दी ? बाकी की ४ टिकिटें कहाँ हैं ?"

"मेरी भूल पकड़ी गई है और यह आदमी (मैं) इन किसानों को टिकिट लिवाए बिना छोड़ेगा नहीं; यों समझकर बस कंडक्टर ने सहमते हुए कहा— "मेरी भूल हो गई है। लो, ये और चार टिकिटें दे देता हूँ।" वे पांचों किसान बाकी की ४ टिकिटें लेकर मेरी इस चेतावनी के लिए मेरा आभार मानते हुए विदा हुए। मैंने कंडक्टर को नम्रता से कहा—"भाई, तुम्हें ऐसी भूल नहीं करनी चाहिये। ये बेचारे अनपढ़ किसान थे। दूसरा कोई होता तो तुम्हारी शिकायत भी अधिकारी से कर देता। तुम्हें सरकार वेतन देती है। फिर तुम्हें ऐसी अनीति करने की जरूरत क्या है? सरकार का नुकसान हमारा ही नुकसान है न?"

उस भाई ने और नम्रता से अपनी भूल कबूल की और आयंदा ऐसा नहीं करने का वचन दिया।

: १४ :

तुमने चार आने जेब में डाले हैं!

[पहले बहुत छोटी-सी बात होती है, परन्तु एक दिन उसी में से बात बढ़ जाती है। अनीति की छोटी-सी चिनगारी मनुष्य की जिंदगी को काली कर देती है, जबकि नीति से मनुष्यजीवन में एक संतोष महसूस करता है और नीति ही जीवन को उज्ज्वल बनाती है। अनीति पर चलने वाले का समर्थन करना भी अनीति को फलने-फूलने देना है। जो मनुष्य ऐसी अनीति का खुल्लमखुल्ला प्रतीकार कर सकता है, वही सच्ची लोकनीति की प्रतिष्ठा कर सकता है। नीचे का उदाहरण इस बात का साक्षी है।]

"मैंने तुम्हें बावलिआरी से धंधुका तक के पूरे पैसे दिये हैं, फिर तुम मुझे हैबतपुर से धंधुका की टिकट क्यों दे रहे हो?" ये शब्द मैंने कंडक्टर से कहे।

बात यों हुई कि मैं धंधुका आने के लिए बस में बैठा था। जब कंडक्टर सबको टिकिट दे रहा था, तभी मैंने अपनी टिकिट माँगी। मैंने उसे पैसे दे दिये थे, इसलिए उसने टिकिट तो दी, पर चार आने खाने के लिहाज से मुझे हेबतपुर से धंधुका की दी। मेरी दृष्टि से यह बात ठीक नहीं थी। मैं ऐसी अनीति का समर्थन कैसे कर सकता था? इसलिए मैंने कंडक्टर से उपर्युक्त बात कही, तब वह लल्लोचप्पो करने लगा—"मैंने तुम्हें हेबतपुर से धंधुका की ही टिकिट दी है। उससे पहले की टिकिट तुम्हें नहीं दी गई, क्योंकि तुमने हेबतपुर नजदीक आया, तभी टिकिट माँगी थी।"

'मुझे लगा कि यह भाई अपनी गलती पर सफाई करके और गलती कर रहा है। इससे मुझे बहुत दुःख हुआ। मैंने उसे कहा-"मेरे भाई! तुम ऐसा क्यों कर रहे हो? यह तुम की हुई गलती को दोहरा रहे हो। मैं अपने भाई के तौर पर तुम्हें कह रहा हूँ कि तुम अपनी गलती स्वीकार कर लो। मुझे तुम्हारी रोजी नहीं छीननी है। लेकिन तुम ऐसी अनीति चलाना चाहो, उसे मैं सहन नहीं करूंगा। मुझे तुम्हारे ऊपरी अधिकारी को यह बात जतानी पड़े, इससे पहले ही तुम अपनी जेब में डाले हुए चार आने की टिकिट काट दो तो अच्छा रहेगा। ऐसा नहीं करोगे तो तुम्हें अधिक मुसीबत उठानी पड़ेगी, जिससे मुझे बहुत दुःख होगा।"

यह बात सुनकर उसने अपनी गलती मंजूर की और बावलियारी से हेबतपुर तक की टिकिट काट कर दे दी।

: १५ :

यों कैसे चल सकता है ?

[प्राचीनकाल में भारतवर्ष में निःस्पृह ब्राह्मण समाज के नैतिक पहरेदार थे। वे अपने सामने होती हुई किसी भी अनीतियुक्त घटना को चुपचाप नहीं सहते थे। वे तुरंत प्रतीकार करते और समाज को शुद्ध रखने की सतत सावधानी रखते। परन्तु जब से ऐसे ब्राह्मण लोभ में पड़े, धन और सत्ता से प्रभावित हुए और उन्होंने समाज की नैतिक पहरेदारी

छोड़ी, तब से उनका, समाज का और राष्ट्र का सभी का पतन हुआ। महात्मागाँधीजी के बाद भूमिका बदल चुकी है। अब समाज या राष्ट्र में कोई भी अनीति चले, उस समय अगर सामाजिक कार्यकर्त्ता उसका नैतिक प्रतीकार करता है तो उसका प्रभाव अवश्य पड़ता है। नीचे का प्रसंग इसकी प्रतीति करा रहा है।]

"साहब ! हमारे इतने लोगों (संख्या मुझे याद न रही) की टिकिट के कितने पैसे हुए ?" गाँव के कुछ मजदूरों ने यों पूछा। मैं जिस बस में बैठा था, उसी में वे बैठे थे। कंडक्टर सबको टिकिट दे रहा था। उसने बहुत-से लोगों को दे दी थी, लेकिन जिन्हें पैसे वापिस देने हों, उन्हें कहता—"अभी देता हूँ।' किन्तु उसने उस समय पैसे वापिस नहीं दिये थे। उसकी नीयत साफ न थी। इन मजदूरों ने भी एक साथ अपनी टिकटें ली थीं। उन्हें कंडक्टर को १९ न. पैसे वापिस देने चाहिए थे, मगर नहीं दिये। और २-४ अन्य लोगों में से भी किसी को दो तो किसी को चार पैसे कम दिये थे। वे सब मन ही मन गुन-गुना रहे थे, पर कोई कण्डक्टर को कुछ नहीं कह रहा था।

इसलिए मैंने कंडक्टर से कहा—"इन सबको आपने पैसे वापिस करते समय १९ पैसे कम क्यों दिये ? यह कैसे चल सकता है ?"

यह सुनते ही वह लल्लो-चप्पो करने लगा। इतने में दूसरी ओर से आवाज आई—"मुझे भी पैसे कम दिये हैं।" तीसरे ने कहा—"मुझे भी इन्होंने पैसे कम दिये हैं।"

मैंने कंडक्टर को उलहना देते हुए कहा—"आप ऐसा क्यों करते हैं ? ये सब कम पैसा देने की शिकायत कर रहे है; अगर ऐसा हो तो यह कैसे चल सकता है ? आपको जरा विचार करना चाहिये था। यदि ऐसा करेंगे तो आपकी नौकरी छूट जायगी; बाद में मारे-मारे फिरेंगे। इसलिए ठंडे दिमाग से सोचिए। बोलो, सच्ची बात क्या है ? इन लोगों को आपने पैसे वापिस कम दिये हैं या नहीं ? सच-सच कह दें। मैं यह हर्गिज नहीं चलने दूंगा।"

मेरी बात सुन कर कंडक्टर ने कहा—"मेरी भूल हो गई। मैं सबके पैसे वापिस लौटा देता हूँ। और आयंदा ऐसा काम नहीं करूंगा।"

यों कह कर जिस-जिसको जितने पैसे कम दिये थे, उस हिसाव से उस उसको कंडक्टर ने पैसे वापिस लौटा दिये; इससे सवको संतोष हुआ। उन मजदूरों ने जाते-जाते मुझे कहा—"भाई साहव ! आपने वहुत वड़ा उपकार किया ! अगर आप न होते तो यह कंडक्टर हमें पैसे वापिस नहीं करता।" मैंने कहा—"अच्छा हुआ; तुम सवने नैतिक हिंमत की; इसीलिए कंडक्टर को सचाई समझ में आई। समाज में नैतिक हिंमत की जरूरत है। सभी के चेहरों पर संतोप की रेखा उभर रही थी।

: १६ :

तुमने दुगुना अपराध किया है !

[राष्ट्र-आयोजन का काम हमारे देश में इन वर्षों में वहुत हुआ है, परन्तु इस कार्य के लिए सरकार ने वैतनिक ग्रामसेवकों की नियुक्ति की, उसमें प्रायः लाभ के वदले हानि ही अधिक हुई है। जव तक ग्रामनिष्ठा वाले, नैतिक शक्ति पैदा करने वाले और ग्रामसंगठन में से घड़े हुए ग्रामसेवक न होंगे, तव तक हमारा देश ऊँचा नहीं उठ सकेगा। इसके लिए गाँवों में जो नैतिक शक्ति सोई हुई है, हताश हो कर लाचार हो गई है, उसे जगानी पड़ेगी। यह काम सर्वांगी दृष्टि वाले क्रान्तिप्रिय साधुओं की प्रेरणा से सक्रिय वने हुए शुद्ध समाजप्रेमी सेवक ही कर सकेंगे। नीचे का प्रसंग इस वात की प्रतीति दे रहा है।]

"लो, ऐ पटेल ! इस पर दस्तखत करो। जल्दी करो।" हस्ताक्षर होते ही फिर कहा—"लो इस खाने में फलां के नाम का हस्ताक्षर करो।" उस किसान ने दूसरे के नाम के भी हस्ताक्षर कर दिये। उसने फिर तीसरी वार कहा—"अव इसके नीचे तीसरा हस्ताक्षर अमुक व्यक्ति के नाम का भी कर दो।" अव तो वह किसान चौंका और वोला—"अव तो आप हमारे गाँव में आ कर उसी व्यक्ति से हस्ताक्षर करा लेना। मैं अव इस पंचायतनामे में हस्ताक्षर नहीं करूंगा।"

मैं पास ही खड़ा था। मुझे लगा कि उसे दूसरी वार हस्ताक्षर करते समय ही साफ-साफ इन्कार कर देना चाहिये था। शायद मुलाहिजे में आकर वह तुरन्त इन्कार न कर सका हो।" मैंने अब अपना धर्म सोच कर उस हस्ताक्षर कराने वाले भाई की ओर मुड़ कर कहा—"आप यह झूठ-फरेब सिखाते हैं ?"

यह सुन कर सरकारनियुक्त ग्रामसेवक की भौंहें तन गई—"इसमें क्या हो गया ? यह तो मैंने अपनी सेफ्टी (सुरक्षा) के लिए किया है।"

उस गाँव में न जाकर यहाँ (दूसरी जगह) वैठे-वैठे काम निपटाना ही क्या ग्रामसेवक की सुरक्षा है ? तुमने दुगुना अपराध किया है—समाज का और सरकार का।" जब मैंने इस प्रकार खरी-खरी बातें सुनाई कि तथाकथित ग्रामसेवक ने तुरन्त वह कागज फाड़ डाला। पर उसके हृदय में सच्चा पश्चात्ताप नहीं हुआ। उस तथाकथित ग्रामसेवक की पोशाक, वाणी और व्यवहार में भी उच्छृंखलता दिखाई देती थी।

सौभाग्य से उस हस्ताक्षर करने वाले किसान ने तुरन्त अपनी गलती मंजूर कर ली—"दूसरे भले प्रलोभन में वह जांय, भले ही आपसी सम्बन्धों में खतरा पैदा हो, कैसी ही विकट परिस्थिति क्यों न हो, सत्य को खतरे में डाला नहीं जा सकता।" ये उद्‌गार निकालते हुए वह किसान मेरा उपकार मानता हुआ विदा हुआ।

: १७ :

आप जैसे कहें वैसे करने को तैयार हूं !

[मनुष्य जब तक अपूर्ण है, तब तक उसे शरीर और शरीर-सम्बन्धित जड़चेतन वस्तुओं के कारण रागद्वेष होते रहते हैं। इस प्रवाह में ज्वार-भाटे आया करते हैं। परन्तु जब उसे कोई जागृत समाज या जागृत व्यक्ति मिल जाते हैं तो उसे अपने दोषों का भान हो जाता है; और तोते की तरह अपनी गलती जाहिर करके साफ कर डालता है।

इसीलिए स्वजागृति और सरकारी कानून और दण्ड से आने वाली जागृति के बीच में एक कड़ी कम पड़ती है। उसे हम आध्यात्मिक बुनियाद वाला नैतिक-सामाजिक दवाव कहते हैं। ऐसा दवाब अगर समाज में बुनियादी सेवकों द्वारा आध्यात्मिक प्रेरकवल डालें तो समाज के प्रत्येक प्रश्न शुद्धनीति व धर्म की दृष्टि से हल किये जा सकते हैं और चारों ओर शुद्धि का वातावरण भी जमाया जा सकता है। निम्नोक्त प्रसंग इस दिशा की यथार्थ प्रतीति करा देता है।]

'देखो, भाई ! उस पटवारी ने..........गाँव के अनेक लोगों से रिश्वत ली है। लोग अब इससे हैरान हो उठे हैं। अब तो आप सरीखे लोगों को इसके लिए कुछ न कुछ उचित कदम उठाना चाहिये।" जब मैं.......गाँव से ....गाँव रेल में बैठ कर जा रहा था तो उसी डिब्बे में बैठे हुए दो किसानों ने उपर्युक्त वाक्य कहे। मैंने पू० मुनि श्री संतबालजी महाराज को इस संबंध में लिखा और मार्गदर्शन मांगा। उन्होंने इस प्रश्न को शीघ्र हल करने की हिदायत की। मैं अपना काम निपटा कर फौरन वहाँ पहुँचा और इस प्रश्न को छानबीन करने के लिए हाथ में लिया। मुझे पटवारी द्वारा ली गई रिश्वत की रकम जितनी बताई गई थी, उसकी जाँचपड़ताल करते हुए ऐसी कुछ बातें मिलीं कि अमुक रकम बीच में ही गाँव के दूसरे लोगों ने रख ली थी। अन्त में, लगभग सभी बातों का पता लग गया। मैं अब उस पटवारी से मिला और उनसे पूछा—"मुझे विश्वस्त सूत्र से आपके सम्बन्ध में ऐसी-ऐसी (स्थिति की) बात मिली है। कहिए, क्या वह सच्ची है ?" उन्होंने कहा—"हाँ, आपकी सारी बात लगभग सच है। अब आप जैसे कहें वैसे मैं करने को तैयार हूँ।"

पूज्य महाराजश्री को मैंने यह बात बताई तो उन्होंने कहा—"उन्होंने (पटवारी वगैरह ने) जिस-जिस व्यक्ति से रिश्वत के रूप में रकम ली हो; उसे वे वापिस दे दें और जाहिर में अपनी गलती के लिए माफी माँग लें। अगर ऐसा न कर सकें तो भी कुछ लोगों के सामने तो अपनी गलती मंजूर करके उन्हें माफी माँगनी ही चाहिये।"

मुझे इस सरकारी कर्मचारी के बारे में यह भी पता लगा कि वे शराब भी पीते हैं और माँस भी खाते हैं। मुझे लगा कि स्वयं ब्राह्मण होते हुए भी वे ऐसा करें, यह बड़े दुःख की बात है। मैंने उनसे इस बारे में पूछा तो उन्होंने कहा—पहले मैं इन दोनों का सेवन करता था, लेकिन अब इन्हें ग्रहण नहीं करता।" यों कहते-कहते उनकी आँखों से अश्रुधारा बह निकली; और अपनी गलती मंजूर करके बारबार उसके लिए माफी माँगने लगे। इसके बाद, उन्होंने जिन-जिन से रिश्वत ली थी, उनके सामने अपनी गलती मंजूर करने और माफी माँगने की बात महाराजश्री के सामने स्वीकार की।

अन्त में, वे पूज्य महाराज श्री के पास आए। जाँच-पड़ताल करने के बाद पता लगा कि पटवारी ने सात व्यक्तियों से कुल ७७) रु० रिश्वत के लिये हैं। उन्होंने वे रुपये मेरे और पंच के रूबरू में उन सात व्यक्तियों को दे दिये और अपनी गलती मंजूर करके सबसे माफी माँगी। जनता पर इस बात का बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा।

अन्त में, वे अत्यन्त नम्रतापूर्वक हाथ जोड़ कर संतोष महसूस करते हुए विदा हुए।

: १८ :

पुलिस-अधिकारी के अत्याचार का प्रतीकार

[सत्य, प्रेम और न्याय ये तीनों धर्ममय समाजरचना के बुनियादी तत्त्व हैं। जब कोई भी सरकारी या गैरसरकारी मनुष्य अत्याचारी बन कर इन बुनियादी तत्त्वों को उखेड़ने का प्रयत्न करता है और अन्याय-अत्याचार करने पर उतारू हो जाता है; तब समाज अथवा समाजसेवकों का कर्त्तव्य हो जाता है, कि ऐसे अनिष्टबलों के खिलाफ अहिंसक प्रतीकार करे। ऐसे समय में अगर समाजसेवकों के पीछे समाज के अन्यायपीड़ित लोग मजबूती से टिके न रहें, फिसल जाँय तो अत्याचारियों का बल बढ़ जाता है और धर्ममय समाजरचना को बहुत हानि

पहुँचती है। नीचे का प्रसंग एक पुलिस-अधिकारी द्वारा किये गए जुल्म के खिलाफ किये गए अहिंसक प्रतीकार का है। ग्रामसमाज के लोग भी ऐसे उद्दण्डतत्त्वों के सामने भय या लोभ के प्रवाह में वहे वगैर कैसे अड़े रहे? यह भी इसमें अतीव प्रेरणाप्रद वस्तु है।]

....गाँव को लगभग १४ साल की एक कन्या सवेरे कंडे वीनने के लिए गाँव की सरहद पर गई थी। तीन लड़के इस कन्या को अकेली देख कर छेड़ने लगे और उसे हैरान की। कन्या रोती-रोती अपने घर आई। लड़के तो भाग गये थे। कन्या ने अपने परिवार को अपनी दुःखद आपबीती सुनाई। परिवार के मुखिया ने सोचा—'इस प्रश्न को चुपचाप रफादफा कर देना भी उचित नहीं है; तथापि कानूनी राह लेना भी ठीक नहीं लगता। इसका आपस में ही वैठ कर हल निकालना चाहिए।" अतः इस भाई ने वहाँ की स्थानीय शुद्धिप्रयोगसमिति' के सामने यह प्रश्न रखा और निवेदन किया कि इसका हल पारस्परिक समाधान व समझाहट के द्वारा निकालने का प्रयत्न करें। समिति के सदस्यों को यह घटना सुन कर बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने उन तीनों लड़कों और उनके अभिभावकों को बुलाया। वे आए। उन्हें इस दुखद घटना के वदले वहुत उलाहना दिया गया। इससे लड़कों और उनके अभिभावकों ने अत्यन्त अफसोस प्रगट किया और अपनी गलती के लिए माफी माँगी। शुद्धिप्रयोगसमिति ने इतने से संतोष मान कर इस प्रश्न का निपटारा किया। कन्या के परिवार वालों को भी आश्वासन दिया। कन्या के पिता ने भी गुनहगारों एवं उनके अभिभावकों को क्षमादान किया।

वहाँ के २४ गाँवों के पुलिस इन्सपेक्टर नामी रिश्वतखोर थे। वे रोज-रोज नये-नये प्रश्न खड़े करके लोगों को तंग करते और उनसे अच्छी खासी रकम रिश्वत में ले लिया करते थे। उनके साथ उनके मातहत वहुत से आदमी व कॉन्स्टेबल भी लोगों को वेहद परेशान करते थे। इन सवके साथ.... गाँव के मुखियाजी अचूक रूप से शामिल रहते थे। मुखियाजी को इस गाँव की कन्या के सताने का पता लगा तो उन्होंने फौरन जमादार को बुला कर यह वात उन्हें वताई। जमादार ने पुलिस इन्स्पेक्टर के कानों में यह खवर पहुँचाई। पुलिस इन्स्पेक्टर किसी न किसी शिकार के जाल में फँसने की

ताक में थे ही। उन्हें तो मनोवाञ्छित चीज मिल गई। अतः उन्होंने तुरंत कानूनी कार्यवाही करके कन्या तथा उसके पिता को एवं तीनों गुनहगार लड़कों व उनके अभिभावकों को थाने में बुलाया। दूसरे कुछ ऐसे चौदसिए (उद्दण्ड तत्त्व) भी वहाँ इकट्ठे किए। शुरूआत में तो उन्होंने उन लड़कों को खूब धमकाया। उनके अभिभावकों को भी तंग किए। लड़की के पिता से कहा—"इस लड़की को हॉस्पिटल में जाँच कराने के लिए ले जानी पड़ेगी।"

यह सुन कर लड़की का पिता बहुत घबराया। लड़की को हॉस्पिटल में जाँच कराने ले जाने पर अपनी जाति और गाँव में उसे अपनी इज्जत चले जाने का डर था; इसलिए उसने लड़की को हॉस्पिटल में न ले जाने की पुलिस इन्स्पेक्टर से प्रार्थना की। पर पु० इन्स्पेक्टर टस से मस न हुए। अन्त में, जो वहाँ चौदसिए थे, उन्होने पु० इन्स्पेक्टर के साथ रिश्वत के बारे में बातचीत शुरू की। पु० इ० ने तीन उँगलियाँ उठा कर ३००) रु० लेने की माँग की। अन्त में, तीनों लड़कों में से प्रत्येक से पच्चीस-पच्चीस रुपये और लड़की के पिता से ७५) रु० रिश्वत लेने का तय हुआ। फलतः पुलिस इन्स्पेक्टर ने कुल १५०) रु० ले कर सबको छोड़ दिये।

यह पुलिस इन्स्पेक्टर अनेक बार जनता को तंग करके रिश्वत लेने की ऐसी गलती कर चुका था। इस सम्बन्ध में इसे समझाया भी गया, सुधरने के मौके भी दिये, लेकिन फिर उसने ऐसा दुष्कृत्य किया, यह बहुत दुःख की बात थी।

इस घटना के कुछ ही दिनों बाद मुझे एक पोस्टकार्ड मिला। जिसमें लिखा था—"....गाँव में एक करुणाजनक घटना हुई है, जिसमें गिरे हुए पर लात मारने की तरह निर्दोष और पीड़ित से उलटे रिश्वत ली गई है। आप जल्दी आ कर इसकी जाँच करें और यथोचित करें। हम आपके साथ हैं।"

उपर्युक्त पत्र पढ़ते ही मैं तुरंत....गाँव के लिए रवाना हुआ। मैं धंधुका स्टेशन से टिकट ले रहा था कि वहीं मुझे....भाई मिल गए। उनके साथ इस प्रश्न के सम्बन्ध में मेरी बहुत-सी बातें हुई। उन्होंने कहा—"ये लोग बहुत

ही रिश्वत लेते हैं और लोगों को तंग करते हैं। अतः यह प्रश्न अब आपको (मुझे) बहुत ही गम्भीरता से हाथ में लेना चाहिए। मैं भी आपके साथ आना चाहता हूँ।" उन्होंने भी टिकट ली और मेरे साथ-साथ आए। हम....गाँव में पहुँचे। प्रश्न की ब्योरेवार जाँच-पड़ताल करने लगे। प्रश्न से सम्बन्धित प्रत्येक व्यक्ति से अलग-अलग मिले। हमें लगा कि इस प्रश्न का जो ब्योरा हमें प्राप्त हुआ है, वह बिलकुल सत्य है और इस पुलिस इन्स्पेक्टर वगैरह ने रिश्वत जरूर ली है। लड़की के पिता से रिश्वत ली, इसका हमें बड़ा दुःख था। फिर हम अपने ढंग से वहां की स्थानीय शुद्धिप्रयोगसमिति के सदस्यों से, लड़की के पिता से, तीनों लड़कों और उनके अभिभावकों से तथा मुखियाजी से; यों अनेक लोगों से लिखित बयान लेने लगे।

....भाई का यह मानना था कि ये लोग इस इलाके की जनता को बहुत परेशान करते हैं और बहुत जुल्म गुजारते हैं, इसलिए ऐसे कठोरहृदयी लोगों को इस बुराई से मुक्त कराने के लिए बहुत ही खतरा उठाना पड़ेगा। साथ ही....भाई का मानना था कि इन अत्याचारियों की जाँच सी. आई. डी. द्वारा करा लेनी चाहिए। सी. आई. डी. के बिना इस काम में सफलता मिलनी कठिन है। यद्यपि ऐसे अन्याय-अत्याचार के प्रश्नों में चला कर सरकारी अधिकारी, कर्मचारी या कानून वगैरह की सहायता लेने में हमारा विश्वास नहीं था और इस दृष्टि से हमें सी. आई. डी. से मदद नहीं लेनी चाहिये थी। लेकिन उस समय, आज की तरह दृढ़ रह कर जनता को जागृत करके जनबल के सहारे समाज की अदालत में न्याय दिलाने की मेरी भूमिका नहीं थी। इसलिए सी. आई. डी. से सहायता लेने के बारे में मैं सहमत हुआ....भाई अहमदाबाद जा कर सी. आई. डी. को ले आए। वे बहुत ही नेक और सच्चे दिल के आदमी मालूम हुए। उन्होंने इस समग्र प्रश्न को बहुत बारीकी से सुना, जाँचा और अपने ढंग से काम किया। कागजात वगैरह कर लिए गए और मामला दर्ज हो गया।

रिश्वत लेने वाले पुलिस इन्स्पेक्टर को इस बात का पता लगा। उसने इस मुकदमे को तोड़ डालने के प्रयत्न शुरू किए। साक्षी, सबूत, गुनहगार तथा अन्य जो-जो व्यक्ति इस प्रश्न में भाग ले रहे थे, उन्हें फोड़ने के लिए लोभ और भय दिखाना शुरू किया। चारों ओर से सिफारिश भी चलानी

शुरू की। पैसे पानी की तरह बहाए जाने लगे; क्योंकि अब मामला बड़ा जटिल बन गया था। पुलिस इन्स्पेक्टर तथा उससे सम्बन्धित जन ऐसी पैरवी करने लगे कि मैंने यह प्रश्न झूठमूठ बना कर खड़ा कराया है। परन्तु जिन भाइयों ने मुझे यह काम सौंपा था, वे अब किसी के मुलाहिजे या शर्म में आने वाले नहीं थे। वे सब के सब मुझे दिये गए अपने वचन पर अडिग थे। मुझे पत्र लिखने वाला भाई भी खूब मजबूत था। गाँव के अमुक अग्रगण्य भाइयों का भी इस सड़ान को निकालने में पूरा सहारा था। फिर भी पुलिस इन्स्पेक्टर ने अपनी सिफारिश से इस मामले को तोड़ डालने के प्रयत्न में हद कर दी थी।

जिस लड़की के साथ अन्याय हुआ, उसकी जहाँ सगाई हुई थी, उसके भावी ससुर के साथ भी पुलिस इन्स्पेक्टर ने बातचीत शुरू की। फलतः तथाकथित ससुर ने लड़की के पिता को सूचित किया कि, इस प्रश्न का ब्योरा सत्य नहीं है। इस प्रकार लिखाओ। अगर ऐसा नहीं लिखाओगे तो मैं अपने लड़के के साथ हुई तुम्हारी लड़की की सगाई तोड़ दूंगा।" इसके उत्तर में लड़की के पिता ने साफ-साफ कह दिया—"मैं तुम्हारे कथन के अनुसार ऐसा सरासर झूठ वक्तव्य नहीं लिखा सकता। और मैं तो तुम्हें भी राय देता हूँ कि ऐसे अन्यायी-अत्याचारी मनुष्य का तुम्हें जरा भी समर्थन नहीं करना चाहिए। हमने तो..........(कार्यकर्त्ता) भाई को विश्वास दिया है और उनके हाथ में हमने यह मामला सौंपा है। हम पर जितनी मुसीबतें आती हों, आएँ; मगर हम उनके साथ विश्वासघात तो नहीं करेंगे।" किन्तु इस सच्चे उत्तर से उनके समधी को संतोष न हुआ। उन्होंने वह सगाई तोड़ दी। यद्यपि 'पाले टेक, उसे मिले अनेक' वाली कहावत के अनुसार लड़की के पिता ने उसकी शादी दूसरी जगह कर दी। लड़की अब अपने ससुराल में सुखी है।

परन्तु पु० इन्स्पेक्टर ने इस मामले को तोड़ने के लिए अब स्वामीनारायण मन्दिर के कोठारी को तैयार किया। मंदिर के कोठारीजी.......... गाँव में आए। लड़की के पिता को फोड़ने के लिए बुलाया। पर वे नहीं गए। मुझे इस षड्यंत्र का पता लगा। इसलिए कोठारीजी लड़की के पिता से मिलें, उससे पहले ही मैं मन्दिर में पहुँचा और कोठारीजी को एकान्त में बुला कर कहा—'ऐसे जुल्म करने वाले मनुष्यों को आप इस प्रकार से प्रोत्साहन दें, यह

आप सरीखे धर्मसंस्था के सदस्य के लिए उचित नहीं कहलाता। ऐसे अधर्म को आप उत्तेजना दें, यह ठीक नहीं है। आपको सोच-समझकर कोई कदम उठाना चाहिए। अगर आप ऐसे अधर्म को समर्थन देने का कदम उठाएँगे तो मैं लोगों के सामने इसका पर्दाफाश किये बिना नहीं रहूँगा। आपको जैसे करना हो करें। मेरा हृदय इस जुल्म को देख कर उबल उठा है। इसलिए दुःखित हृदय से मैं आपको कह रहा हूँ।" कोठारीजी के राम जागे। वे समझ गए कि यहाँ मेरी दाल नहीं गलेगी। अतः। अतः वे अपना-सा मुंह लेकर चले गए।

ऐसा ही एक और प्रयत्न पु० इन्स्पेक्टर ने यह किया कि तीनों अपराधी लड़कों में से एक लड़के के पिता को, जो एक व्यापारी की जमीन जोतता था, कहलाया कि 'अगर तुम इस मामले में झूठ नहीं बोलोगे तो मैं वह जमीन तुम से ले लूँगा' मुझे और पूर्वोक्त पत्र लिखने वाले किसान को भी बहुत धमकी दी गई। पत्र लिखने वाले के पिता अपने पुत्र को इस डर के कारण अकेले कहीं बाहर जाने नहीं देते थे।

एक ओर यह परिस्थिति थी। पुलिस इन्स्पेक्टर इस प्रकार धमकी और दबाब से सारे मामले को उलटाने का प्रयत्न का कर रहे थे। दूसरी ओर मुझ पर भी वे कूटनीति का दाव चलाने लगे। मुझे उन्होंने कहा—"तुम्हें इस प्रश्न को अब मुल्तवी कर देना चाहिए।" परन्तु मैं तो अड़ा हुआ था। मैंने उनसे कहा—"इस सम्बन्ध में जो प्रश्न उठाया गया है, वह कदापि मौकूफ हो ही नहीं सकता। मगर यदि आप अपना कल्याण चाहते हों तो ऐसे कितने ही दुष्कृत्यों के पाप को कम करने के लिए पश्चात्ताप करें और जाहिरा तौर पर जनता के सामने माफी माँग लें तो आप हलके हो जायेंगे और स्वाभाविक रूप से इस मुकद्दमे पर भी उसका कुछ प्रभाव पड़ेगा। कुदरत आपको मदद करेगी। बाकी तो, कोर्ट में जो कुछ होगा उसे तो आपको सहन करना ही पड़ेगा।"

उन्होंने मेरी बात को स्वीकर न किया और दिन-ब-दिन अधिकाधिक सख्ती करने लगे; और लोगों के दिमाग में जबरन यह ठसाने के प्रयत्न में कोई कसर न रखी कि "मैंने यह सारा मामला झूठा खड़ा किया है।"

आखिरकार जब चारों ओर से बाजी बिगड़ती मालूम हुई तो पु० इन्स्पेक्टर ने एक व्यापारी के गुमाश्ते के साथ पूज्य मुनिश्री संतबालजी महाराज के पास

उनके सौराष्ट्र के प्रवास में पत्र लिख कर भेजा। उसमें उन्होंने पू० महाराजश्री से इस प्रकार की प्रार्थना की थी—"आपके कार्यकर्ता को सूचित करके मुझे बचा लीजिए। भूल के लिए क्षमा दे कर सेवा का मौका दें।" उस गुमाश्ते ने भी महाराजश्री से इस बात की बहुत सिफारिश की। किन्तु पू० महाराजश्री ने कहा—"इस भाई (पु० इ०) का मुझे स्वयं बहुत ही कटु अनुभव हुआ है। इस घटना में····कार्यकर्ता ने तो इससे पहले उन्हें सुधरने का बहुत बार मौका भी दिया है। मुझे खबर मिली है कि इस भाई ने अपने ऊपरी अधिकारी से ले कर अनेक जगह अपनी सिफारिश का उपयोग किया है। ऊपर के और नीचे के सरकारी अधिकारी ऐसे गुनहगारों की पीठ ठोकते रहते हैं। इस मामले में तो लोगों ने स्वयं शिकायत की है। कार्यकर्ता ने तो लोगों की सच्ची बात को सिर्फ सहारा दिया है। फिर भी मुझे स्वयं को जनता पर विश्वास है। फौजदार (प० इ०) ली हुई रिश्वत वापिस दे दे और जिन-जिन व्यक्तियों का उसने अपराध किया है, उनके समक्ष जा कर माफी माँग ले।"

इससे पुलिस इन्स्पेक्टर ली हुई रिश्वत वापिस देने को तो तैयार हुए मगर माफी माँगने के लिए हृदय से तैयार नहीं हुए। लोगों में नैतिक शक्ति जागी, वे अपनी सच्ची बात पर अड़े रहे। प्रत्येक व्यक्ति ने अपनी बात यथार्थरूप से बताई। यह मुकद्दमा ३ वर्ष तक चला। अन्त में, पुलिस इन्स्पेक्टर और उनके एक साथी जमादार दोनों का अपराध साबित होने पर सरकार ने उन्हें पुलिसविभाग की नौकरी से बर्खास्त किया। जनता इनकी जुल्मज्यादती से बची।

मैं यह समझता हूँ कि अदालतें या पुलिस विभाग ऐसे अपराधियों को अमुक ढंग से सजा दें तो भी उनका हृदयपरिवर्तन नहीं होता। हृदय-परिवर्तन के लिए जनता के नैतिक प्रतीकार की जरूरत है। यद्यपि इस घटना में गुनहगार की बुद्धि ठिकाने लाने के लिए सरकारी तंत्र का आश्रय लिया गया, यह मुझे पसन्द नहीं था। पू० महाराजश्री ने मुझे इस प्रश्न के सम्बन्ध में सलाह दी—"तुम्हें स्वयं सरकार का आश्रय लेने जा कर अमुक वर्ग के या अमुक व्यक्ति के दोषों को दूर कराने की इच्छा नहीं रखनी चाहिए। तुम्हें

तो मुख्यतया सरकार को प्रेरित करनी है; जनता और सरकार के बीच में सांकल की कड़ी बनना है; विशेषतया सरकार को सच्चे काम में समर्थन देना है। तुम्हारा मुख्य काम तो जनता में सदाचार, विवेक, विवेकपूर्ण अनुशासन, साहस और धैर्य लाना है; गुनहगारों का हृदय-परिवर्तन कराने की श्रद्धा सुरक्षित रखनी-रखानी है।"

आज यदि ऐसा प्रश्न मेरे पास आए तो मैं सरकार के पास नहीं जाऊँ, प्रत्युत सामाजिक रीति से वातावरण ही ऐसा बनाने का प्रयत्न करूँ, जिससे सरकार स्वयं चला कर पीछे आए और ऐसे प्रश्न को हाथ में ले ले। फिर भी जिन-जिन भाइयों ने इस प्रश्न में दिलचस्पी ली थी, उन सबको भली भाँति संतोष हुआ। जनता पर इस प्रश्न का बहुत अच्छा असर हुआ।

: १९ :

मैं सब सच-सच कहने को तैयार हूं !

[जहाँ तक ग्रामों में नैतिकशक्ति जागृति न हो, वहाँ तक समाज के अमुक तत्त्व गाँवों का धमकी दबाव व उद्दण्डता से रिश्वत के रूप में शोषण करते रहते हैं। सरकार जिन लोगों को समाजसेवा के अमुक काम सौंपती है; वे स्वयं भी रिश्वतखोर बन जाते हैं, या वे सामाजिक कार्यों में लापरवाही दिखाते हैं। ऐसी रिश्वतखोरी को सरकार अकेली नहीं मिटा सकती। चाहे जैसी सख्त रिश्वतखोरी हो, अगर जनता जागृत हो जाय और जनता को जागृत करने वाले थोड़े से भी बुनियादी कार्यकर्ता इस कार्य में जुट जांय तो गाँवों में नैतिकशक्ति की जागृति द्वारा उसे नेस्तनाबूद की जा सकती है। नीचे की घटना ग्रामशक्ति और कार्यकर्ता की जागृति का जादू-सा प्रभाव डालने का उदाहरण पेश कर रही है।]

एक पुलिस के मन में विचार आया—"चलो ! आज कहीं से पैसे निकलवाएँ !" फिर तो पूछना ही क्या ? उसकी मारक उपजाऊ बुद्धि ने दूसरे साथियों

के साथ योजना वना ली वह और दूसरे दो, यानी तीनों मिल कर……… गाँव में पहुँचे। वहाँ पुलिस स्टेशन पर रुके। सर्वप्रथम उन्होंने पगी को वुलाया और····किसान को वुला लाने का आदेश दिया। जव वह किसान आया तो उसे कहा—"पाटेल ! हमें खवर मिली है कि तुम्हारे घर में वंदूक का कारतूस व टोपी वगैरह हैं। अतः सच-सच वता दो। हम तुम्हारे घर की तलाशी लेना चाहते हैं। वेचारा भोला किसान तो सुन कर हक्का-वक्का हो गया। वह वोला—"अरे भाई साहव ! कैसा कारतूस और कैसी वात ? हरि-हरि करो ! मैं ऐसी चीजों को क्यों रखूं ? तलाशी लेनी हो तो खुशी से ले सकते हो !" यों कहने के वावजूद भी मुख्य पुलिस ने उसे धमकाया और गाँव के पंच को लेकर उस किसान के घर की तलाशी लेनी शुरू की। घर की सारी वस्तुएँ इधर-उधर तितर-वितर कर दीं, पर कहीं भी कारतूस, दारू वगैरह न मिले। इसलिए मुख्य पुलिस घर के अन्दर घुसा और स्वयं एक कमरा खुलवाया। उसने कहा सव लोग दूर हो जाओ। कारतूस दारू वगैरह इसी कमरे में है, ऐसी खवर हमें मिली है। यह कह कर कमरे में हाथ डाला और अपनी वांह में डाली हुई कारतूस वगैरह की पोटली वहाँ डाल दी। कुछ ही क्षणों वाद पगी को वुला कर कहा—"यहाँ आओ, देखो, यह पोटली किस चीज की है ?" पगी एकदम आया। उसने पोटली हाथ में ली। पंच के सामने उसने वह पोटली खोली तो उसमें लगभग ५ तोला वंदूक चलाने का कारतूस तथा २०-२५ टोपी थीं। पोटली खुलने के वाद तो मुख्य पुलिस ने अपना दाव पूरा चलाया। वह उस किसान को मनमानी गालियाँ देने लगा और वोला—"पटेल कहला कर धंधे तो ऐसे ही करते हो न ?" मुख्य पुलिस ने दूसरे पुलिस को आर्डर दिया कि इस पटेल को रस्से से वांध लो। पंचायतनामा किया। दूसरे कागजात किये और किसान को पुलिस-स्टेशन पर ले आए वेचारा किसान घवराया। मेरी इज्जत मिट्टी में न मिल जाय, वह इस डर से कांपने लगा। उसका परिवार फूट-फूट कर रोने लगा।

यह देख कर दूसरों के दिल में भी दुःख हुआ ही होगा। परन्तु पुलिस के सामने वोलने की किसी की हिम्मत न हुई। उलटे, पुलिस के सामने वे आजीजी करने लगे। वहुत से लोगों को यह पता भी था कि यह किसान तो वहुत ही गरीव है; इसके घर में कारतूस वगैरह होगा ही कहाँ से ? यह तो

एक साजिश है; यों जानते हुए भी सब चुप रहे और उस किसान को छुड़ाने के लिए खुशामद करने लगे और रिश्वत देने की बात शुरू की। सारे गाँव में से पुलिस को सच कहने की किसी की हिम्मत न हुई। रिश्वत देने की बात की तो मुख्य पुलिस ने कहा—"यह मामला इतना भयंकर है कि इस किसान को छोड़ा नहीं जा सकता। हमें इस मामले को सरकार के सामने पेश करना ही चाहिये।" लोग डर गये। परन्तु पुलिस के एक जानकार सम्बन्धी ने बातचीत आगे बढ़ाई। पुलिस ने सिर पर हाथ रखते हुए कहा—"चलो, जब आप इस किसान के लिए इतनी सिफारिश कर रहे हैं तो मैं इसे छोड़ तो सकता हूँ पर अभी के अभी मुझे तीन-सौ रुपये दो, तभी छोड़ूँगा।" एक सिपाही ने किसान के कान में धीरे से यह बात कही। वह किसान बोला—"पर मैं गरीब आदमी तीन-सौ रुपये कहाँ से लाऊँ?" दूसरे भाइयों ने भी किसान की गरीबी की जानकारी मुख्य पुलिस को दी। आखिर ९०) रु० दूसरे भाइयों से उधार ला कर उस किसान ने पुलिस को दिये। तीनों पुलिस ९०) रु० नकद ले कर वहाँ से रवाना हुए।

मैं..........स्टेशन से अहमदाबाद जा रहा था; तभी मुझे समाचार मिले कि..........गाँव में किसान से पुलिस ने ९०) रु० लिए। किसान के घर की तलाशी ली और उसके कमरे में पुलिस ने स्वयं कारतूस आदि की पोटली रख दी और उसे ही खुलवा कर किसान पर अपराध लगा कर पंचायतनामा कराया। किसान को बहुत ही परेशान किया, वगैरह। यह सब सुनते ही मैंने अपना कर्त्तव्य अदा करने के हेतु इस काम को महत्वपूर्ण मान कर अहमदाबाद जाना स्थगित किया। वहाँ का काम मैंने अपने साथ आये हुए कार्यकर्ता मित्र को सौंपा। मैं सीधा हो....गाँव में पहुँचा और उस किसान के घर गया। उससे मिला। सारी बात विस्तार से पूछी तो उसने कहा—"भाई, बात तो सही है। पुलिस ने ही कारतूस आदि की पोटली मेरे कमरे में रख दी था और मुझे धमका कर मुझ से ९०) रु० लिये। मुझे इसके लिए कुछ नहीं करना है। पैसा तो हाथ का मैल है। अगर हम इनके खिलाफ कुछ करने जाएँगे तो ये लोग हमें सुख से नहीं रहने देंगे। हमें तो खेतों में व गाँव के बाहर कई बार भटकना पड़ता है। इसलिए वे हमें हैरान किये बिना न रहेंगे। आप आये, यह अच्छा किया।"

इस भोलेभाले किसान से मैंने कहा—"भाई ! तुम इस तरह से डरते रहो और सच्ची वात कहने से कतराओ, यह उचित नहीं है। ये लोग इसी तरह से रिश्वत लेने के आदी हो गये हैं। आज तुमसे रिश्वत ली; कल दूसरे को हैरान करके लेंगे। इस तरह अन्याय-अत्याचार को पपोलना ठीक नहीं है। हिम्मत रखो और पुलिस कौन-कौन थे, मुझे वताओ। जैसे आपको हैरान किया, वैसे अव तक में कितने ही लोगों को उन्होंने हैरान किये होंगे। और अव इसके लिए हम योग्य कदम नहीं उठाएँगे तो दूसरों में नैतिक हिम्मत नहीं आयेगी। अतः तुम मुझे निःसंकोच हो कर वताओ, संस्था(मंडल) तुम्हें मदद करेगी। फिर भी उस किसात ने तो टालमटूल करने की कोशिश की। मैंने गाँव के पगी, मुखिया तथा पंच को वुलाए और जिन-जिनको इस घटना की जानकारी थी, उन सवको वुलाए और इस प्रश्न को विशेप गहराई से समझने का प्रयत्न किया। मुझे जो रिपोर्ट मिली थी, वह सव सच्ची थी।

अव मुझ पर विशेप जिम्मेदारी आ पड़ी। इसलिए मैंने इस घटना का पूरा व्यौरा जानने के वाद गाँव के लोगों की एक सार्वजनिक सभा वुलाई। लोगों के सामने वात रखी—"यह प्रश्न सिर्फ एक किसान का ही नहीं है, सारे समाज का है। जो पुलिसवर्ग समाज का रक्षक कहलाता है, वह स्वयं भक्षक वन जाय, यह कितनी दुःखदायक वस्तु है ! यदि हम जागृत होकर नैतिक शक्ति रखकर इन पुलिसों को समझाने-वुझाने का कोई योग्य कदम नहीं उठाते हैं तो अपने कर्त्तव्य से च्युत होते हैं और अन्याय-अत्याचार को पपोलने का काम करते हैं। भविष्य में वे दूसरों को सताएँगे। इसलिए हमें सरकार की इन्तजार किये वगैर इस प्रश्न को हाथ में लेना चाहिए और तुम सवको मुझे इस काम में मदद करनी चाहिए।"

गाँव को मेरी यह वात पसंद आई। लोगों ने तीनों पुलिसों के नाम दिये और यह निश्चय हुआ कि गाँव के पांच किसान पुलिस के पास थाने में जाने के लिए मेरे साथ आएँ।

दूसरे दिन सवेरे रात्रि को तय किये अनुसार पांच भाई थाने में जाने के लिए आए भी सही; परन्तु सवको डर लग रहा था कि कहीं पुलिस हम पर उल्टा मुकद्दमा दायर करके हमें पकड़ न लें ! इसलिए उन पांचों में से

चार तो डर के मारे सब्जीमंडी में भाग गये। सिर्फ एक भाई रहा। उसने मुझे कहा—"मैं पहले जाकर यह पता लगा आऊँ कि वह पुलिस कहाँ है ? वाद में मैं तुम्हें बुला लूंगा।" मैंने इस प्रकार करने की स्वीकृति दी। वह भाई सीधा उसी पुलिस के पास पहुंचा। वह उस समय होटल में बैठा था। उससे मिल कर उस किसान भाई ने नारायण जाने, कुछ समझाया होगा। उससे वात करके वह किसान तुरन्त मुझे बुलाने आया। मैं उसके साथ गया। वह मुख्य पुलिस होटल में बैठा हुआ था। वह पटेल जाति का था।

मैंने उससे सीधे ही प्रश्न किया—'कहिये,..........गाँव में जो घटना हुई है, उसमें सत्य क्या है ?" तब उन्होंने कहा—"आप मेरे पेट पर पैर न रखें तो मैं सब कुछ सच-सच कहने को तैयार हूँ। फिर आप मुझे कहेंगे तदनुसार करने को तैयार हूँ। पर मेरी नौकरी नहीं छूटनी चाहिये।" मैंने उन्हें वचन दिया—"अगर आप मुझे निखालिस हृदय से सारी बात हूबहू कह देंगे तो मैं आप पर जरा भी आंच नहीं आने दूंगा। इस वात की आप चिन्ता न करें।"

यों आश्वासन देने के वाद हमने वातचीत शुरू की। मैंने उनसे एक बात पूछी—"यह वताओ कि किसान के घर में कारतूस आदि थे या आपने रखे ? उन्होंने उत्तर दिया—"किसान निर्दोष था। कारतूस आदि की पोटली मैंने खुद वहाँ रख दी थी।" उसके वाद मैंने उनसे रिश्वत का पूछा तो उन्होंने कहा—"वात सही है। हमने तीनों ने मिल कर ६०) रु० लिये हैं।" मैंने उनका हृदय झकझोरते हुए कहा—"वोलो, अब आपको क्या करना है ?" तव उन्होंने कहा—"आप जैसे कहेंगे वैसे मैं करने को तैयार हूँ। मुझे विश्वास है कि आप मेरे पेट पर पैर नहीं रखेंगे।" मैंने मुख्य पुलिस भाई से कहा—"मुझे और कुछ नहीं करना है। एक भाई के तौर पर आपके हृदय को जगाना था। चलो, जो कुछ हुआ सो हुआ। अब आप रिश्वत के रूप में ली हुई रकम किसान को वापिस दे दें। और..........गाँव में मेरे साथ चल कर उस किसान को हैरान किया उसके लिए उससे व और लोगों से जाहिर में माफी मांग लें और आयंदा ऐसा न करने का वचन दे दें।" मुख्य पुलिस ने मेरी वात मंजूर की और कहा—"हम सारे रुपये खर्च कर चुके हैं, इसलिए

इस समय हमारे पास रकम नहीं है। अतः आप हमें १५ दिन की मुद्दत दीजिए।" मैंने उनकी वात मान ली; बशर्ते कि वे किसी के द्वारा जामिन दिला दें। अतः मेरे साथ आए हुए भाई ने उनकी जामिन दे दी। इसके बाद हम उस दिन तो रवाना हुए। मुझे लगा कि पुलिस ने इतनी जल्दी सब वातें मान लीं, इसमें मेरे साथ आने वाले भाई का प्रयत्न और ईश्वरकृपा ही कारण है।

१५ दिन की मुद्दत पूरी हुई। मैं वादे के अनुसार ठीक १६ वें दिन वस से.........पहुँचा। वह पुलिस भाई भी वसस्टैंड पर मेरी इंतजार में इधर-उधर चक्कर लगा रहे थे। दूसरे दो पुलिस छुट्टी पर चले गये थे। यह पुलिस भाई मुझे देखते ही वोला—"आओ, भाई, आओ! मैं तो आपकी ही इन्तजार कर रहा था। चलो, हम...गाँव में चलें।" हम दोनों.......गाँव में शाम को पहुँच गए। हमने उस किसान को भी वुलाया। साथ ही पंच, मुखिया, पगी और गाँव के कुछ नागरिक वगैरह को भी वुलाया। सभी के इकट्ठे होने पर मेरी उपस्थिति में पुलिस ने उस किसान भाई को ६० रु० सौंप दिये। और हाथ जोड़ कर पश्चात्ताप-सहित किसान से माफी माँगी और इस गलती के लिए अफसोस प्रगट किया। जो लोग वहाँ हाजिर थे, उनके सामने आयंदा ऐसी गलती न करने का उन्होंने वचन दिया।

मुख्य पुलिस के इस व्यवहार से सवको संतोप हुआ। किसान और उसका परिवार अत्यन्त प्रसन्न हुआ। मुझे भी आनंद हुआ। अब किसानों को भी लगा कि थोड़ी-सी भी नैतिक हिम्मत भारी विजय दिला देती है।

इन सबसे निपट कर जब हमरो पुलिस विदा होने लगा तो उसने मेरा आभार माना। मुझे लगा कि इस पुलिस का हृदय अत्यन्त नम्र और सरल है। मगर कुसंग का प्रभाव मालूम होता है। मेरी उनके साथ जीवन के सम्बन्ध में बहुत-सी बातें हुईं। वे अत्यन्त भावविभोर हो गये। यह प्रसंग उनके जीवन में प्रगतिशील सिद्ध हुआ। वे अपने जन्म स्थान गए। उसके बाद लगभग ८ महीने के पश्चात् जब इस ओर आए तो एक बार सहसा..........स्टेशन पर मुझे मिल गए। बहुत ही भावविभोर हो कर उन्होंने मुझे कहा—"मैं आपको कभी भूल नहीं सकता। आपने मुझ पर बहुत उपकार किया है।

अगर आपने उस वक्त मुझे सीधे रास्ते पर न चढ़ाया होता तो आज मेरी क्या दशा होती; कह नहीं सकता।" मैंने उन्हें कहा-"भगवान की आप पर कृपा हुई, ऐसा समझिए।" मानो उनके अन्तर में भगवान् ही बस गए हों, इस प्रकार वे पवित्र हृदय से अपने जीवन का पथ तय करते जा रहे थे।

हमारे एक दूसरे के हृदय संतोष से आनन्दित हो रहे थे।

: २० :

आयंदा जिंदगी में ऐसा नहीं करूंगा !

[मानव में जैसे ईश्वर का वास है, वैसे शैतान का भी वास हैं। यद्यपि प्राणिमात्र में ऐसा है। परन्तु मनुष्य में दूसरे प्राणियों के वजाय एक विशेषता है। मानवीय शैतान जब बिगड़ता है वाघ, चीता और सर्प जैसे विकराल प्राणियों से करोड़ों गुना अधिक उपद्रव मचा उठता है। शैतान को शैतान से नहीं हराया जा सकता। शैतान को हराने के लिए भगवान् को जगाना चाहिए। मानवहृदय में रहे हुए भगवान् को जगाने और शैतान को भगाने के लिए प्रार्थनामय उपवास एक प्रबल साधन है। है। इसमें समाज के महादोषों को जड़मूल से उखाड़ देने की सम्भावना हैं। अलवत्ता उपवासकर्त्ता को किसी नीतिनिष्ठ संस्था के अन्तर्गत यह मार्ग ग्रहण करना चाहिए अथवा किसी असाधारण लोकमान्य व्यक्ति या प्रतिष्ठत व्यक्तियों की शुभेच्छाएँ प्राप्त कर लेनी चाहिए। उपवास भी तभी अपनाए जाँय, जब दूसरी अनेक प्रक्रियाएँ उस सिलसिले में हो जांय, प्रत्येक परिस्थिति में नहीं। उपवासी में अरागद्वेष की स्थिति पहले से पैदा हो चुकी होनी चाहिए। भालनलकांठा कार्यप्रदेश में हुई निम्नलिखित घटना इस दिशा में प्राप्त सुन्दर सफलता स्वयं वता रही है।]

शाम के लगभग पांच वजे होंगे, एक अध्यापक की पत्नी गाँव में अपनी भैंस ढूंढ़ने के लिए इधर उधर दौड़-धूप कर रही थी। मैंने उन्हें देख कर पूछा-बहन, क्यों, क्या वात है ? तव उन्होंने कहा—"भाई ! सवके पशु चर कर गाँव में वापिस लौट आए; पर मेरी भैंस अभी तक गौचर से आई नहीं प्रति-

दिन मेरी भैंस ठीक समय पर आ जाती है। चाहे जो हो। मेरी भैंस ऐसी है कि रास्ते में कहीं जरा भी खड़ी नहीं रहती। कौन जाने, क्या हुआ आज ? मालूम होता है, कोई मेरी भैंस को उड़ा ले गया है।" सचमुच हुआ भी ऐसा ही था।

मैंने गाँव के कुछ लोगों को यह बात बताई। अतः सभी अपना कर्त्तव्य मान कर चारों ओर भैंस की तलाश में निकल पड़े। भैंस ले जाने वाले भाई को इस बात का पता लगा। इसलिए उसने उस भैंस को जहाँ बाँधी थी, वहाँ जा कर तुरन्त खोल दी।

बहन के पति (अध्यापक) दूसरे गाँव से आए। वे भी यह बात सुन कर तुरन्त भैंस को ढूंढ़ने निकल पड़े। सभी अलग-अलग दिशा में भैंस को ढूंढ़ रहे थे। इतने में तो खोली हुई भैंस एक दिशा में ढूँढने गए हुए भाइयों को सामने से आती हुई दिखाई दी। अतः वे भैंस को ले कर वापिस लौटे और घर आए।

भैंस को उन्होंने खूंटे से बाँधी। परन्तु भैंस के मुंह पर चारों ओर खून के दाग लगे हुए दिखाई दिये। थोड़ा सूजन भी मालूम हुआ। ऐसा क्यों हुआ ? यों विचार करते-करते सबको लगा कि यह भैंस नारियेल के मोटे रस्से से मुंह के चारों ओर कस कर बांधी हुई होगी; इसी से ऐसी हालत हुई होगी।

"भैंस तो घर आगई। लेकिन इसे ऐसे बेहूदे ढंग से बांधने वाला कौन होगा ? इसका पता लगाकर प्रतीति करनी चाहिए। आज तो वह इस अध्यापक भाई की भैंस ले गया, कल शायद दूसरे की भी ले जाय। इसका कोई न कोई हल ढूंढ़ना चाहिए। काफी अर्से से इस गाँव में पशुचोरी का उपद्रव है। ऐसे गुनहगार को हम पपोलते रहते हैं, यह ठीक नहीं है।" अन्त में जो भाई पशुचोरी का धंधा करता था, उस पर सबको शक हुआ। इसके लिए जांचपड़ताल शुरु हुई। पर उसने भैंस ले जाने की बात बिलकुल कबूल न की। मेरा मन तो स्पष्टरूप से कह रहा था कि..........भाई के सिवाय भैंस को ले जाने वाला और कोई नहीं हो सकता। इसलिए मैंने गाँव के इस महत्वपूर्ण प्रश्न ... पटारा करने के लिए फिर से इस गोपालक भाई की विशेष जांच-पड़ताल

की। यह भाई मुंह पर तो मीठी-मीठी बातें किया करता; मगर अपने अपराध का स्वीकार करने को जरा भी तैयार न हुआ।

मेरे मन में इस बात पर खूब मन्थन चला। इस भाई में सोये हुए राम को जगाने के लिए मुझे क्या करना चाहिये ? मुझे लगा कि इसके लिए मुझे कुछ तपस्या करनी चाहिए। मुझे विश्वास है कि इससे उस भाई में सोया हुआ भगवान जरूर जागेगा। मेरे लिए भी यह एक बोधपाठ था। इस युवक भाई के लिए मेरे मन में कोई द्वेषभावना या घृणा नहीं थी।

भगवान् की दया से मुझे वृद्ध माताजी वगैरह की भी इसमें सम्मति मिली। पू० मुनिश्री संतबालजी महाराज के भी आशीर्वाद प्राप्त हुए। मैंने अपने आपको भगवान् के भरोसे सौंप दिया। शुरुआत में दिनांक……… को सवेरे मैंने शर्ती तीन उपवास करने का संकल्प जाहिर किया। अगर इन तीन दिनों में यह गोपालक भाई अपनी गलती मंजूर न करे तो फिर क्या करना, यह बाद में विचारणीय था। मैं एक तटस्थ स्थान पर उपवास में बैठ गया. उपवास में मैंने सिर्फ पानी लेने की छूट रखी थी।

मैं उपवास में बैठा हूँ, ये समाचार उक्त गोपालक भाइ को मिलते ही उसने इधर-उधर दौड़-धूप करनी शुरू की। एक-दूसरे से लोग मिलने लगे। लोगों ने उस गोपालक भाई से कहा—"अगर तूने गलती की हो तो तुझे झटपट उसे मंजूर कर लेनी चाहिए। तू अगर अपनी गलती कबूल कर लेगा तो यह……… भाई उपवास खोल देंगे।" वह भाई मेरे पास आया तो सही, पर सब गोल-मोल बातें करने लगा; अपने गुनाह का उसने स्पष्टरूप से इकरार नहीं किया। इसलिए मैंने उससे कहा—"मुझे विश्वास है कि तुम्हारा दिल जरूर पसीजेगा। भगवान् की दया से तुम्हारा राम अवश्य जायगा।"

इतनी बात होने पर फिर वह भाई मेरे पास से गया और दूसरे गाँवों से अपने बहुत-से जातिभाइयों को बुला कर लाया और उनके द्वारा यह कहलाने लगा कि 'आप अब उपवास खोल लें।' परन्तु मैंने सबसे कहा कि "मैं अपने निश्चय पर अडिग हूँ।"

आखिर इसी दिन रात के लगभग ९ बजे होगें। यानी मेरे उपवास को ३६ घंटे हुए होंगे कि वही गोपालक भाई अपने अनेक सगे-सम्बन्धियों को ले

कर मेरे पास आया। कुछ ही देर में वहाँ गाँव का विशाल जनसमूह जमा हो गया। उस..........भाई ने सबके सामने अपनी गलती मंजूर करते हुए माफी माँगी और यह वचन भी दिया कि "भविष्य में जिंदगी में कदापि ऐसी गलती नहीं करूंगा।" उसके साथ आये हुए दो जातिभाइयों ने भी जनता के सामने ये उद्गार जाहिर किये कि "भविष्य में कदाचित् भूल-चूक से भी इस युवक से कोई गुनाह हुआ हो हम गाँव के सामने उसकी जानकारी करा देंगे।" मैंने तपस्या का हेतु सिद्ध हुआ जान कर पारणा किया। इस प्रकार सुखद वातावरण में सभी एकता का अनुभव कर रहे थे। इस युवक की आज तक की हुई गलतियों के लिए उसे सजा न देकर क्षमा की और इसकी पुरानी आदतें फिर से स्वप्न में भी न जाग उठें, इसके लिए उस युवक के हेतु सवने भगवान् से प्रार्थना भी की। अन्त मैं, सभी आनन्दपूर्वक विदा हुए।

दूसरे दिन प्रातःकाल यह भाई मेरे पास आया और मुझे कहा—"अब मैंने आपको अपना गुरु बनाया है। इसलिए मेरे यहाँ दूध पीने चलें। आप मेरे यहाँ आएँगे तो मेझे अतीव आनन्द होगा।"

मैंने उससे कहा—"भाई! हम सब के गुरु एक ईश्वर ही हैं। हम सभी बन्धु बन्धु हैं। तेरे यहाँ दूध पीने में मुझे प्रसन्नता होगी।

उसके बाद मैं उसके यहाँ दूध पीने लगा। इससे उसे अत्यन्त आनन्द हुआ। मैं भी प्रसन्न हुआ।

इस घटना के बाद वह भाई लगभग दो साल जिंदा रहा; लेकिन इस अर्से में उसने पशुचोरी का एक भी गुनाह किया हो, ऐसा मुझे जानने को न मिला।

सच्चे हृदय से की हुई थोड़ी सी भी तपस्या भोले भाले ग्रामीणजन में सोये हुए राम को अवश्य जगा देती है; ऐसी श्रद्धा सबके दिल में रम गई।

: २१ :

सच्चा न्याय कौन दिलाए ?

[मानवसमाज की सुरक्षा और सुव्यवस्था के लिए न्याय अत्यन्त जरूरी है। जिस स्थान पर कोई अपराधी किसी व्यक्ति या समाज के प्रति अन्याय करता है, उसी स्थान पर अगर तत्काल ही समाज के नैतिक दबाव से उस अन्याय को मिटा कर न्याय की स्थापना हो जाय तो सरकार की दण्ड-शक्ति की आवश्यकता अपने आप निमूंल हो जायगी। साथ ही सिफारिश, पक्षपात, स्वार्थ, स्वार्थ, लोभ और भय तरीखे अनिष्ट से दूर रह कर शुद्ध न्यायलयी संस्थाओं के संचालन में सच्चा न्याय मिले तो गुनहगार और अन्यायपीड़ित दोनों की आत्मा पवित्र हो जाती है। निम्नलिखित घटना ऐसे ही शुद्ध न्याय की प्रतीति करा रही है।]

"भाइयों ! ये ककड़ियाँ तो मैंने बीज के लिए खास-तौर से रखी हैं। इसलिए तुम्हें नहीं दे सकता।"

इस आशय के एक किसान के उद्‌गार····गाँव के युवकों के गले नहीं उतरे। ये ५-६ युवक कुछ अर्से से जवानी के मद में मतवाले होकर अपना भान भूले हुए थे। अग्रगण्यता के घमण्ड ने भी इसमें हिस्सा अदा किया। फलतः वे युवक अपनी न्यायदिशा भूल कर उस किसान को हैरान करने लगे। ककड़ियाँ खाने के लिए इनका जी ललचाया। इसीलिए वे इस किसान के खेत पर पहुँचे और उस पर रौब गाँठने लगे। किसान ने जब ककड़ियाँ देने के लिए इन्कार किया तो वे रोष से भभक उठे। और योजना बना कर ये पाँचों ही रात को किसान के खेत पर पहुँच गए। ८-१० ककड़ियों को रहने दे कर बाकी का सारा खेत सफाचट कर डाला। वह किसान उस समय अपने खेत की झौंपड़ी में सोया हुआ था। उसे पता न लगे इस प्रकार ये जवान ककड़ियाँ ले गए। किसान जागा तब तक तो मानो सारा खेत सो गया था। अपने प्रिय बालक को कोई काट जाय उतना या उससे भी बढ़कर दुःख एक किसान को अपनी प्राणप्रिय फसल (अनाज या फल) को लूटने या काटने पर होना

गया। चोरी के रुपये चुकाने की जिम्मेवारी जिसके सिर पर डाली गई थी, उस पगी ने इस चोरी की जांच करके निश्चय किया कि यह काम............ के पगी ने किया है। इसलिए उसने अपने सगे-सम्बन्धियों द्वारा इसके लिए प्रयत्न किया; परन्तु उससे कुछ सफलता न मिली। फलतः किसी ने उसे राय दी कि अपने पू० संतबालजी महाराज हैं न! उन्हें तुम अर्जी लिखो। जिससे वे तुम्हें इस कार्य में मदद करेंगे।" उसने पू० महाराजश्री को एक विनतिपत्र लिखा। उस पर से महाराजश्री ने मुझे इस घटना की जांच करके योग्य हल निकालने की हिदायत दी। फलतः मैं..........गाँव में गया और पूरी जांच पड़ताल के बाद मुझे पक्की खबर मिली कि..........पगी ने ही यह चोरी की है। मैं सीधा..........गाँव से कुछ ही कोस पर दूसरे गाँव में जहाँ..........पगी रहता था, गया।..........पगी से मिला। मैंने कहा—"मुझे पू० मुनिश्री संतबालजी महाराज ने भेजा है। सच्ची बात क्या है? मुझे कहो। हम तुम्हें हैरान नहीं करेंगे और न कोर्ट में तुम पर मुकद्दमा दायर करेंगे।"

शुरूआत में तो उसने ऐसा स्वांग रचा मानो वह इस विषय में कुछ भी न जानता हो। परन्तु मैंने फिर पू० महाराजश्री की इच्छा दोहराई कि "पू० महाराजश्री एक निष्पक्ष सच्चे संत हैं। वे हमारे प्रदेश में हमारी उन्नति के लिए पैदल घूमते हैं। उनके मन में गाँव के लोगों के प्रति बहुत श्रद्धा है। यदि वे यह बात सुनेंगे कि..........पगी ने अपनी गलती मंजूर नहीं की, तो उन्हें अपार दुःख होगा। इसलिए जैसा भी जो कुछ बना हो, वैसा कह दो। सच्चे हृदय से पश्चात्ताप करने वाले को प्रकृति मदद करती है। प्रभु तुम्हारा भला करेगा।"

इस पर से...पगी के राम जागे। उसने कहा—"भाई! कोई मर मिटे तो भी मैं ऐसी बात उसके सामने स्वीकार नहीं करूँ। परन्तु यह तो बापू (महाराजश्री) ने आपको भेजा है और मुझे आपकी बात पर विश्वास जम रहा है; इसलिए कहता हूँ कि यह चोरी मैंने और दूसरे कुछ मेरे सम्बन्धियों ने मिल कर की है। घर के मालिक की यह बात सरासर झूठी है कि नकद रुपये ७५) चुराये हैं। नकद तो सिर्फ तीन रुपये ही थे। बाकी गहने, वर्तन

और कपड़े चुराने की बात सही है। पर अब तो वह सब सामान हमने काम में ले लिया है। कपड़े तो हम लाये ही नहीं। उन्हें तो गाँव के बाहर ही फेंक आए थे। गहनों और कपड़ों की जितनी रकम होती है, वह मैं देने को तैयार हूँ। परन्तु मुझे कुछ दिनों की मुद्दत देनी पड़ेगी। मेरे साथियों से, जो उस समय रे साथ थे, मुझे मिल लेना पड़ेगा।" इसके बाद मैंने उसकी बात की सचाई का समर्थन किया और अमुक दिनों की मुद्दत भी दी। अन्त में-उसने कहा—"अमुक दिन तुम पू० महाराजश्री के पास''''गांव में आना और उनकी उपस्थिति में हम सब इस प्रश्न को निपटाएँगे।" उस पगी ने मेरी बात मंजूर की।

निश्चित दिन जिसके घर में चोरी हुई थी वह, उस गाँव का पगी और यह चोरी करने वाला पगी तथा उसके दो साथी गुनहगार; यों सब पू० महाराजश्री के सान्निध्य में इकट्ठे हुए। उस समय शुरूआत में उस गुनहगार पगी ने पू० महाराजश्री से कहा—"बापू ! मैं आपके चरण छू कर कहता हूँ कि ये लोग झूठे हैं। नकद रुपये ७५) नहीं थे, सिर्फ तीन ही थे। बाकी की बात सच्ची है।"

यह सुन कर पू० महाराजश्री ने घर के मालिक से पूछा—"क्यों भाई ! यह कह रहा है, वह बात सच्ची है ?" तब वह सिर नीचा करके चुप हो गया। इसलिए पू० महाराजश्री को लगा कि''''पगी की बात यथार्थ है।' पू० महाराज श्री ने उन्हें कहा—"जो वस्तुएँ तुम लोगों ने ली हों, उन्हें वापिस दे दो, अथवा उनकी जितनी कीमत हो, उतनी दे दो।" फलतः''''पगी ने तथा दूसरे साथी गुनहगारों ने यह रकम देने के लिए मुद्दत देने की माँग की। अन्त में, उन्हें मुद्दत दी गई और यह हिदायत दी गई कि इस मुद्दत के अंदर-अंदर तुम्हें रुपये दे देने होंगे। इसके बाद सब प्रेम से बिदा हुए।

स्वाभाविक है। ऐसे समय में कौन उसे आश्वासन दे? कौन सच्चा न्याय दिलाए? लगभग सारा खेत उजाड़ कर डाला था।

किसान गहरी चिंता में डूब गया। उसके मन में शक पैदा हुआ कि यहाँ जो युवक कल ककड़ियाँ मांगने आये थे और मैंने उन्हें 'ये बीज के लिए रखी हैं,' कह कर नहीं दीं; इसलिए हो न हो उन्होंने ऐसा किया हो! किसान ने जांच-पड़ताल करनी शुरू की। अन्त में, उसकी शंका सच्ची निकली और निश्चित हो गया कि वे युवक ही ककड़ियाँ ले गये हैं।

इसके बाद किसान ने यह सारी बात अपने सम्बन्धियों से कही। उनमें से एक ने यह राय दी कि "इसके लिए फौजदारी मुकद्दमा दायर करना चाहिये; ताकि आयंदा ये युवक ऐसा कृत्य न करें। दूसरे ने सलाह दी—"हमारा यह (किसान) मंडल है न? फिर हम कोर्ट में क्यों जाएं?" सबने मिल कर किसान मंडल को निवेदन करने का निश्चय किया।

उसके बाद उक्त किसान ने किसानमंडल को इस आशय की अर्जी लिख कर दी—"मेरे खेत से बीज के लिए रखी हुई ककड़ियाँ..........गाँव के युवक चुरा ले गये हैं। उसका हर्जाना मुझे मिलना चाहिए और उचित न्याय होना चाहिए।

इस प्रकार की अर्जी मिलने के बाद मंडल के कार्यकर्त्ताओं ने इस घटना की जांच की तो उसे किसान की बात सच निकली। सचमुच उस किसान का बहुत बड़ा नुकसान हुआ था। मंडल के कार्यकर भाई ने मुझे यह खबर दी और इसका योग्य हल निकालने के लिए कहा। मैं उनके साथ..........गाँव में पहुँचा और उन अपराधी युवकों को बुलाए। मैंने उनसे सारी बात पूछी। उन्होंने कहा—"हमने ककड़ियाँ चुराई हैं। हमारी गलती हो गई। भविष्य में ऐसा काम नहीं करेंगें।"

अब इस प्रश्न में योग्य न्याय (फ़ैसला) देने के लिए मध्यस्थ नियुक्त करने का निश्चय हुआ। दोनों (गुनहगार और अन्याय पीड़ित) पक्ष के दो-दो मध्यस्थनियुक्ति का और मेरा नाम सरपंच के रूप में निश्चित हुआ। मध्यस्थों ने सोच-विचार करके इस प्रकार निर्णय दिया—(१) अपराध का जाहिर में लिखित इकरार (२) ककड़ियों का नुकसान लगभग ६० से ७० रुपये का हुआ

है, अतः ६१) रु० हर्जाने के रूप में लिये जांय और (३) इन युवकों की पिछले काफी अर्से से आचरणहीनता देखते हुए गलती के विशेष प्रायश्चित्त के रूप में सामाजिक धर्मादि में इनसे आर्थिकदण्ड १५) रु० लेना।

लिखित करने में जरा आनाकानी की गई। गलती का इकरार और उसका अफसोस तो तुरन्त ही हृदय से व्यक्त हो चुके थे। गाँव के दूसरे अग्रगण्य लोगों ने कहा—"संस्था के द्वारा कार्य हो, वहाँ उसे लिखित रूप में तो कर ही देना चाहिए।" फलतः उनकी वात स्वीकार की गई और लिखित इकरार-नामा लिखा गया। गुनहगारों के अभिभावकों ने तुरन्त हर्जाने और दण्ड की रकम चुका दी। इस प्रकार न्याय का पालन सुशक्य वना।

: २२ :

आपकी वात पर विश्वास होता है !

[गाँवों में वहुत-सी विकृतियाँ तो शहरों के संसर्ग के कारण आ गई हैं। अगर गाँवों में नैतिक जागृति वाले सच्चे सेवकों और विश्वानुवन्धी दृष्टि वाले साधुओं द्वारा नैतिक-धार्मिक पहरेदारी रखी जाय तो गाँव शुद्ध रह सकते हैं। गाँवों की जनता में धर्म की पात्रता तो पड़ी ही है। उनका हृदय इतना काला नहीं हुआ कि वे अधर्म को पचा लें। इसलिए वुनियादी सेवक की जरा-सी सहानुभूति मिले और उस पर विश्वास जम जाय तो वे अपने अपराध को तुरन्त कवूल करते हैं और शुद्ध हो जाते हैं। नीचे का प्रसंग इस वात की प्रतीति करा रहा है।]

"इस गाँव में पगियों की पक्की चौकीदारी थी। इसलिए इस गाँव के पगी को यह चुराई हुई रकम दे देनी चाहिए।" उपर्युक्त आशय का निर्णय करके गाँवों के लोगों ने उक्त पगी को जताया। इससे उसे वहुत दुःख हुआ।

वात यों हुई कि कुछ दिनों पहले..........गाँव के एक परिवार के घर में से..........पगी चोरी करके कुल ४००) रुपये का माल (गहने सहित) ले

: २३ :

अब तो सबको यह बुराई दूर करनी है !

[घर के कुसंस्कार जैसे गाँव में पहुँच जाते हैं, वैसे एक व्यक्ति के सुसंस्कार सारे गाँव को जगा देते हैं। पर ऐसे व्यक्ति में सुसंस्कारों के साथ अपने में और गाँव में नैतिक जागृति लाने का उत्साह होना चाहिए। साथ ही उस गाँव की विकृति दूर करने के लिए शुद्धिकार्य में प्रवीण शुभनिष्ठा वाले सेवकों का सहयोग मिले तो उस गाँव के भाग्योदय होने में क्या कमी रह सकती है ? नीचे का प्रसंग सारे गाँव में व्याप्त चोरी की बुराई को जड़मूल से मिटाने की प्रतीति कर रहा है—]

"अब तो इस गाँव में चोरी की हद हो गई। इस गाँव के दिन फिर गए हैं। कोई सुरक्षा नहीं। उसमें गरीबों को तो इस गाँव में रहना ही भारी पड़ रहा है।" भय से कांपते हुए दो-तीन साधनहीन ग्रामीण जनों ने, कोई कोई सुन न ले, इस दृष्टि से मेरे सामने उपर्युक्त शिकायत पेश की और मुझ से इस कार्य में सहायता मांगी।

मैंने कहा—"मेरा काम करने का तरीका दूसरा है। मैं सरकार की अपेक्षा जनता को बड़ी शक्ति मानता हूँ। इसीलिए मैं तो सरकार के समक्ष नहीं, पर जनता के समक्ष ही अपील करूंगा। मुझे जनता की नैतिक शक्ति जगाने में बहुत दिलचस्पी है। तुम सरीखे सादेसीधे ग्रामीण भाई मेरी आवाज में आवाज मिलाएँ तो यह काम जल्दी और आसानी से हो सकता है।" मेरी यह बात सुन कर उन्हें आशा बंधी और वे मेरे कार्य में मूक बन कर सहयोग देने को तैयार हुए। एक दिन मैं उस गाँव में गया और गाँव को इकट्ठा करके साफ-साफ सुना दिया—"भाइयो ! अब तो हम सबको मिल कर एकदम इस-बुराई को दूर करके ही दम लेना है। क्या यह आपको अच्छा लगता है कि गाँव की अपकीर्ति हो ? ऐसे गाँव में सज्जन पुरुष कैसे रह सकते हैं ? तुम्हें नीतिन्यायपूर्वक रोजी कमानी चाहिए। चोरी जैसे अनीति की रोजी से कितने दिन काम चलेगा ?"

मैंने अपना हृदय गाँव के आगे उड़ेल दिया और गाँव के लोगों को इस बुराई को निकालने के लिए सहकार देने का कहा। सभा में मन्दिर के एक महाराज आए थे। उन्होंने भी इस बात का समर्थन किया। उसके मन में दुःख तो होगा ही। परन्तु आज उसे वाचा मिली। उन महाराज ने एक दूसरे भाई से दिल की यह व्यथा कही। उस भाई का इस गाँव में वजन अच्छा था। उसने फिर गाँव को इकट्ठा किया।

गाँव के सामने फिर अपनी व्यथा दर्दभरी वाणी में प्रगट करते हुए उन महाराज ने कहा—"अब तो ऐसा मन में आता है कि इस गाँव को छोड़ कर चला जाऊँ ! मुझसे तुम्हारा पाप जरा भी सहा नहीं जाता।"

तुरन्त ही उस वजनदार ग्राम के अग्रगण्य ने कहा—"गाँव के एक नागरिक के रूप में इस पाप के निमित्त से मैं ३ दिन के उपवास करना चाहता हूँ।" इससे सारे गाँव को जबर्दस्त धक्का लगा। मन्दिर के महाराज और ग्राम के अग्रगण्य के साथ दूसरे तीन ग्रामवासियों ने इन उपवासों के समर्थन में एक-एक उपवास किया। सारे गाँव में सनसनी फैल गई। तीसरा दिन पूरा हो, इससे पहले ही गाँव ने इकट्ठे हो कर पवित्र संकल्प किया—"अब इस गाँव में चोरी नहीं होगी।"

तुरन्त ग्रामसमिति बनाई गई। दो चौकीदारों की नियुक्ति की गई। यह व्यवस्थित काम शुरू हुआ जान कर मन्दिर के महाराज और गाँव के अग्रणी ने पारणे किये। गाँव में आनन्द छा गया।

उसके बाद मालूम हुआ कि इस गाँव में आज तक चोरी बिलकुल नहीं हुई। यह गाँव अब आलस्य छोड़ कर पुरुषार्थी भी बना है। सचमुच यह गाँव अब चोर नहीं रहा; चोरी नहीं करने की आदत से अभ्यस्त हो गया है।

: २४ :

चोरी का कलंक साफ होना ही चाहिये !

[पुलिस या न्यायालय न्याय और सुरक्षा के साथ-साथ समाज के मूलभूत सुधार का काम नहीं कर सकते। नैतिक ग्रामसंगठन के

निष्ठावान कार्यकर्ता गाँवों में सतत नैतिक पहरेदारी रखें और गाँवों में अनिष्टतत्वों के घुसते ही सावधान करें तो शीघ्र ही गाँव अनिष्टतत्व को खदेड़ सकता है। इसमें गुनहगारों को जड़मूल से सुधरने का पूरा अवकाश है। ऐसे प्रयोग देशभर में हों तो शीघ्र ही हमारा देश नैतिक उत्थान कर सकता है। तानाशाही या हिंसा का मार्ग पैवंद लगाने जैसा है। वह शीघ्रगामी जरूर मालूम होता है, परन्तु वह रास्ता सही नहीं है। नीचे से शुरू होने वाला नैतिक लोकतंत्र का अहिंसक मार्ग ही सच्चा है। उसके सक्रिय होते ही, अन्त में उसकी गति बढ़ जाती है और वह चिरस्थायी बनती है। नीचे के प्रसंग से यह बात आसानी से समझी जा सकती है।]

"अब तो तुम्हें इस गाँव को निष्कलंक बना देना चाहिये। यह कलंक बड़े से बड़ा है। तुम्हारे बालकों पर इसके कैसे बुरे संस्कार पड़ते हैं। दूसरा गाँव भी तुम्हारे गाँव के साथ सहकार का सम्बन्ध नहीं रख सकता। ऐसा अकेला अलग-थलग रहा हुआ गाँव नरक-सा दुःखी हो जायगा। इसलिए अब सभी लोगों को समय रहते चेत जाना चाहिये।"

ऐसी बातें जब-जब मैं इस गाँव में जाता, तब-तब कहा करता था। परन्तु ढीठ बने हुए ग्राम के लोग इस बात को कहाँ सुनते ?

अनेक वर्षों से.........गाँव चोर के रूप में प्रसिद्ध हो चुका था। पहले तो अमुक-अमुक भाई भरणपोषण के लिए ही चोरी करते थे, परन्तु बाद में तो इनकी संख्या दिनोंदिन बढ़ती ही गई। जो लोग चोरी नहीं करते थे, वे भी अनदेखी अनसुनी करने लगे। फलस्वरूप सारा गाँव लगभग बिगड़ चुका था। रात को चोरी करना और दिन में सोये रहना, यह इस गाँव का मुख्य पेशा बन गया। घर में सेंध डालना, गाँवों की सीमा से कल्याण कपास बीन लाना, गेहूँ के खेत के खेत काट कर फसल चुरा लाना और राहगीरों को लूट लेना; इस प्रकार इस गाँव में क्रमशः चोरी और लूट बढ़ती चली गई।

इस प्रदेश में किसानमण्डल के कार्यकर्ता के नाते मुझे यह बात अत्यन्त खटकने लगी। एक दिन मैंने दृढ़ मनोबलपूर्वक संकल्प किया—"अब हर सप्ताह में एक दिन इसी गाँव को देना है।" मैं इसके अनुसार इस गाँव में

जाने लगा। सबसे पहले मैं बालकों से मिलता, गाँव में सभा करता, जुलूस निकालता, प्रभु की प्रार्थना कराता, धुन बुलाता, उसके बाद नैतिक सूत्रों (नारों) का उच्चारण कराता और नीति, धर्म की बातें करता। इसके पश्चात् मैं मुख्य-मुख्य अपराधियों से मिलता। उनके साथ दिल खोल कर बात करता।

इस प्रकार मेरा सम्पर्क ग्रामजनों से बढ़ता चला गया। गाँव के अग्रगण्यों पर इसका अच्छा प्रभाव होता मालूम हुआ। आखिर तो सबके दिल में अपना जीवन तथा अपने गाँव का जीवन अच्छा बने, ऐसी शुभेच्छा पड़ी होती है! सिर्फ इस शुभेच्छा को जगाने की जरूरत होती है। कुछ अग्रगण्यों ने अब कमर कस कर प्रचार भी करना शुरू किया—"अब हम स्वयं ही अपराधियों का पर्दाफाश करेंगे; किसी की परवाह या मुलाहिजा नहीं रखेंगे। हमारे इस सारे गाँव में से यह चोरी का कलंक साफ होना ही चाहिये।"

यों चारों ओर नैतिक वातावरण बना। अब सिर्फ लोकदबाव की जरूरत थी। इसी बीच एक दिन एक प्रसिद्ध मुख्य चोर का राम जगा। उसने खुल्लमखुल्ला कह डाला—"आज से मेरे लिए चोरी हराम है!"

सद्भाग्य से, कुछ ही दिन बीतने पर उसकी श्रद्धा मजबूत हुई। मैंने उसे आम सभा में बोलने के लिए निवेदन किया। उसने स्वीकार किया। एक सभा में उसने अपना दिल खोलकर उद्गार निकाले—"भाइयो! चोरी का रास्ता मूलतः खराब है। उसमें कुछ भी फायदा नहीं है। देखो, मैं जब चोरी करता था तो मुझे जरा भी सुख न था। मेरा दिल रातदिन धड़कता रहता। पुलिस का डर तो रहता ही था, परन्तु मनुष्य के पैरों मैं की आहट सुनते ही मैं भय के मारे काँप उठता। भूखे पड़ा रहना पड़ता। रात मैं को कई कोसों भागता दौड़ता। कई जहरीले जानवरों के सिर कुचलने पड़ते। कई रातों जंगल में ही गुजारनी पड़तीं। निश्चिन्तता तो होती भी कैसे? और फिर इसमें मिलता भी क्या था? अब जब से मैंने चोरी छोड़कर मेहनत करनी शुरू की है, तब से शान्तिपूर्वक नींद ले सकता हूँ। भगवान् सुखपूर्वक रोटी दे ही देता है। इस पर से मेरे सरीखे सभी भाइयों से मेरी विनति है कि यह बुरा धंधा छोड़ो और सुखी बनो।"

इस भुक्तभोगी भाई की अपील का सब पर अच्छा असर हुआ। सही ढंग से सुधरे हुए अपने भाइयों से कोई कहे तो उसका अचूक प्रभाव क्यों नहीं पड़ेगा ? सारा गाँव चोरी को गाँव से विदा करके के लिए कटिबद्ध हो गया। धीरे-धीरे सारा गाँव इस बुराई से मुक्त हुआ।

आज चारों ओर इर्दगिर्द के गाँव कह रहे हैं—'उफ ! इस वर्ष तो छोटी-बड़ी चोरी होने से बच गए। सचमुच भगवान् ने हमारी पुकार सुन ली है !"

एक दुःखद बात यह हुई कि पूर्वसंस्कारवश इस वर्ष इसी गाँव में एक मन, १५ सेर कल्याण कपास की एक चोरी की घटना हुई। परन्तु शीघ्र ही गाँव ने उस चोर को इस तरीके से पकड़ लिया और गाँव में घोषणा की—"जिसने ····भाई को चोरी की हो; वह स्वयं अपनी श्रद्धा जमती हो, उसके पास जा कर अपने आप अपनी भूल कबूल कर ले और कल्याण कपास के दाम दे दे।"

सारे गाँव के द्वारा की गई यह ललकार तुरंत प्रभावकारी बनी और जिसने यह चोरी की थी, उसने उपर्युक्त घोषणा के अनुसार अमल किया।

: २५ :

मुझे अपनी भैंस वापिस दिलाओ !

[गाँव में पशुधन दिनोंदिन कम होता जा रहा है। कई पशु कत्लखानों में चले जाते हैं, कई चुरा लिए जाते हैं, अथवा लापरवाही के कारण कई अकाल मृत्यु के शिकार हो जाते हैं। भारत का यह दुर्भाग्य है। कई गाँव तो पशुचोरी के लिए प्रसिद्ध हो चुके हैं। पशुचोरी के कारण गाँवों में उद्दण्डता, हिंसा और दूसरे अनिष्ट तक पनपते हैं। धीरे-धीरे ग्राम्यसंस्कृति के तत्त्व लुप्त होते जाते हैं। इसलिए यदि समाजसेवक सावधानी नहीं रखेंगे तो चोरी के साथ-साथ उद्दण्डता, गुंडागर्दी और खूनखच्चर भी बढ़ते जायेंगे। इसलिए सच्चे सेवकों का कर्त्तव्य है कि वे पशुचोरी करने वाले और जिनके पशु चुराये गए हैं उन दोनों से मिल कर उचित व्यावहारिक न्याय दिला दें; ताकि ये सब अनिष्ट शान्त हो जांय। नीचे की घटना इसकी वास्तविक प्रतीति दिलाती है—]

"मेरी भैंस..........भरवाड़ चुरा ले गया है। अतः उसकी जांच करा कर मुझे अपनी भैंस वापिस दिलाओ।"..........गाँव के पटेल और उसके सम्बन्धियों ने गोपालकमंडल के एक कार्यकर्ता को इस आशय की अर्ज की। जांच करने पर पता लगा कि इस पटेल भाई की भैंस..........भरवाड़ चुरा ले गया है। अतः कार्यकर्ता भाई उक्त..........भरवाड़ के पास पहुँचे। उसे पूछा तो उसने इस बात को मंजूर किया और कहा—"मैं अमुक दिन भैंस वापिस ला कर दे दूँगा।" इसलिए कार्यकर्ता भाई ने उस पर विश्वास रख कर उस पटेल ने कहा—"तुम और कुछ न करना। तुम्हें अपनी भैंस मिल जायगी। उसकी जिम्मेदारी मैं लेता हूँ।"

इससे किसान को बहुत संतोष हुआ और उसने अन्य किसी प्रकार का अगला कदम उठाने की बात मौकूफ रखी। पर इस बात को काफी अर्सा हो गया, फिर भी..........भरवाड़ भैंस वापिस नहीं लाया। इसलिए पटेल ने मांग की—"अभी तक मेरी भैंस नही आई तो अब चाहे जैसे भी मेरी भैंस आपको ला कर देनी चाहिए।" गोपालक कार्यकर्ता ने उस भारवाड़ को दबा कर कहा—"चाहे जिस तरह से अब जल्दी से जल्दी तू उस पटेल की भैंस ला कर दे।"

इस पर गोपालक ने साफ कह दिया—"भैंस वापिस आ सके, ऐसा कोई उपाय नहीं रहा। जिनको मैंने भैंस सौंपी थी, उन्होंने मेरे साथ धोखा किया। अब मेरे हाथ में भी कुछ न रहा। अतः अब आप कहें जितने रुपये उसके बदले मे दूँ।"

इसके बाद गोपालक कार्यकर्ता ने उस पटेल को बतलाया कि भैंस की जो कीमत आंकी जाय, वह अब तुम्हें स्वीकार कर लेनी चाहिए।" पटेल ने स्वीकार किया कि "मध्यस्थ पंच भैंस की जो कीमत तय करें, वह लेना मुझे मंजूर है।" इसलिए दो मध्यस्थ गोपालक की ओर से और दो पटेल की ओर से नियुक्त किये गए। ये चारों व्यक्ति मिल कर बैठे और कीमत तय करते समय भरवाड़ के मध्यस्थों ने भैंस की कीमत ५०) रु० आँकी; जबकि किसान के मध्यस्थों ने उसकी कीमत ३५०) रु० आंकी। दोनों पक्ष के मध्यस्थों में आकाश-पाताल जितना मूल्यांकन का अन्तर रहा। इसलिए उन्हें लगा कि

"अब इस बारे में निर्णय के लिए एक सरपंच नियुक्त किए बिना कोई चारा नहीं। सरपंच जो कहें वह निर्णय हमें मान्य करना चाहिए।" इसलिए मेरा नाम सरपंच के रूप में पेश किया गया। यह प्रश्न मुझे सौंपा गया।

कीमत आंकने का काम बड़ा पेचीदा था। इसलिए पहले तो मैंने पूरी जांच की कि यह भैंस कितने रुपयों में खरीदी गई थी? इस किसान के यहाँ यह कितने साल तक रही? इस गाँव के बहुत-से लोगों से मैं प्रत्यक्ष जा कर मिला तो पता लगा कि भैंस बहुत बढ़िया थी। काफी दूध दोनों टाइम देती थी। दूसरे बियान की थी। किसान के मध्यस्थों द्वारा आंकी गई कीमत उचित थी। इस सब हकीकत पर से मैंने फैसला दिया कि "भैंस की कीमत मैं ३००) रु० आंकता हूँ। परन्तु गोपालकों और किसानों का सम्बन्ध मधुर रहे इसके लिए भैंस के ३००) रु० गोपालक से लेकर किसान उसमें से ५०)रु० गोपालक को खुशी से वापिस लौटा दें।"

किसानों ने फैसला सुनते ही कहा—"फैसला न्यायोचित दिया गया है। हमें अत्यन्त संतोष है।"

इस प्रकार यह मामला निपटा। गोपालक ने भी यह रकम दे देने की बात मंजूर की। परन्तु यह रकम उसने अभी तक दी नहीं। इसलिए उस किसान की अर्जी पुनः किसानमंडल पर आई। उसमें लिखा था..........मेरी भैंस की कीमत के रुपये अभी तक मुझे नहीं मिले हैं। अतः ऐसा प्रबन्ध करें जिससे मुझे वह रकम मिल जाय।"

इसके लिए किसान मंडल और गोपालक मंडल के कार्यकर्ताओं का प्रयत्न चल रहा है। सफलता अवश्यम्भावी है।

: २६ :

अंत में तो सत्य ही जीतता है !

[कानून स्वयं हमेशा लंगड़ा होता है, वह जिस प्रयोजन के लिए बनाया जाता है, उसमें समाज का वातावरण सहायक हो, तथा

अदालत के सभी अंग सद्भावना वाले हों, तभी उस कानून द्वारा सफल प्रगति हो सकती है। परन्तु ब्रिटिश शासनकाल से कानून और सरकारी न्यायालयों का ऐसा अनुभव आया है कि कानून सच्चा न्याय नहीं दे सकता अथवा अपराधी को निःशंक होकर अपनी गलती स्वीकार करने की रियायत नहीं कर सकता। उलटे कई बार कानून अपराधी को झूठ बोलने की, गलती मंजूर न करने की या झूठे साक्षी तैयार करने की प्रेरणा देता है। प्रत्युत आज बड़े-बड़े अपराधों के मामलों में कानून अपराधी को संरक्षण देता है। जबकि नई समाजरचना के कार्यों में प्रेरकों तथा शुद्ध समाजनिर्माता की प्रेरणा से चल रही समाज की अदालत में कार्यकर्ताओं की मध्यस्थता द्वारा जो न्याय दिया जाता है, उसमें अपराधियों को सत्य कहने और अपनी गलती स्वीकार करने की रियायत दी जाती है। नीचे की चोरी की घटना में चोरी करने वालों का पता पुलिस या पुलिसविभाग के अधिकारी नहीं, वरन् एक ग्रामसंगठन का कार्यकर्ता लगाता है और उनसे गलती मंजूर करवा कर माल वापिस दिला देता है। यह कितनी भव्य, प्रेरणाप्रद वस्तु है !]

"तुम शिकायत लिखाओ। किन्हीं के नाम दो, तुम्हें जिन पर शक हो उनके, तो फिर मैं उस पर से चोरी की जाँच करूं। सच्चे-झूठे थोड़े से नाम दो, फिर तो वाकी का काम हम सब कर लेंगे।"

ये शब्द..........कस्बे के एक फौजदार के थे। मैंने उनसे कहा—"देखिए जहाँ तक पूरी प्रतीति न हो, वहाँ तक किन्हीं के झूठमूठ नाम नहीं दिये जा सकते।" तब फौजदार बोले—"तो हम कोई देव हैं !। तुम नाम न दो तो जांच कैसे करें ?"

वात यह हुई कि..........गाँव में..........भाई के घर में छत के नलिये (परनाले) उखाड़ कर अन्दर घुस कर किसी ने चोरी की। गर्मी का मौसम होने से घर के सब लोग आगे के आंगन में सोये हुए थे। इसलिए चोरों ने घर के अन्दर से साँकल बन्द करके पिछली दीवार के पास से घर में घुस कर काम किया। सवेरे पाँच वजे सब जागे, तभी पता लगा कि चोरी हो गई

है। गाँव के सब लोग आए। पैर देखे। गाँव में पगी की पक्की पहरेदारी थी। पगी कहीं दूसरे गाँव में गया हुआ था। उसे बुलाया। वह आया। उसे यह सब घटना देख कर बड़ा दुःख हुआ।

जिस घर में चोरी हुई थी वे मेरे सम्बन्धि थे, और घर में जो.......... भाई था, उसकी उम्र २० साल की थी। फिर भी उसके लिए यह पहला प्रसंग होने से घर के सब लोग घबरा रहे थे। इसलिए मुझे.. ....गाँव से बुला लाने के लिए आदमी भेजा। मैं..........तक रेल में आया और वहाँ से घोड़ी लेकर ४ बजे..........पहुँचा। सारी परिस्थिति जानी। वहीखाते मेरे हाथ से लिखे हुए थे। इसलिए रोकड़ वही पर से आय-व्यय का हिसाव करके कितनी रकम गई और गहने वगैरह कितनी कीमत के गए, उसका आँकड़ा तैयार किया। मेरे खयाल से सोने और चाँदी के गहने और नकद रकम कुल मिला कर करीव ६०००) रु० की कीमत की रकम की चोरी हुई। नये कपड़े लगभग ५००) रु० के घर के वाहर निकाल कर वे बरामदे में छोड़ गए।

मेरे आने से पहले ही मुखियाजी ने पंचनामा करके पुलिस थाने में रिपोर्ट लिख भेजी। शाम को फौजदार आए और उन्होंने मुझे दरवार (गढ़) में अपने निवास पर बुलाया। घर के मालिक..........भाई को भी बुलाया और पूछ-ताछ की—"कहो भाई। तुमने इस चोरी की रिपोर्ट क्यों नहीं लिखाई? यह मुखियाजी की रिपोर्ट आई है।" घर के मालिक ने कह दिया—"मेरे बुजुर्ग तो ये..........भाई हैं, आप इन्हें पूछिए।" इसके बाद फौजदार घर पर मुआयना करने आए और उपर्युक्त उदगार (झूठे सच्चे कुछ नाम देने के) निकाले। मैंने तो किसी के नाम न दिये।

यह चोरी वड़ी थी, इसलिए फौजदार साहव ने अपने विभाग के वड़े अधिकारियों को खवर दी। इसलिए उनके ऊपरी अधिकारी डिप्टी इन्स्पेक्टर आए। उन्होंने चोरी वाले घर पर आ कर मुआयना किया। फिर अहमदावाद से डी. एस-पी. आए। उन्होंने यह देख सुन-कर वारीकी से जाँच-पड़ताल शुरू की। उन्होंने अपने अधिकारियों से पूछताछ की कि इस मामले में अब तक उन्होंने क्या-क्या किया? अन्त में खुद जांच के लिए

रवाना हुए। स्थानीय अधिकारियों से मिली हुई जानकारी के आधार पर वे..........कस्वा होकर..........पहुँचे। वहाँ जिस पर शक था, उसके घर की तलाशी ली। पर कुछ भी माल न मिलने से वे शाम को वापिस लौटे।

इसके बाद हमें ऐसा लगा कि अब कोई अफसर नहीं आएगा। अतः मैं खुद जांच-पड़ताल करने निकला। दूसरी ओर..........से भी दो आदमियों को तलाश करने भेजे, तथा गाँव का पगी भी तलाश करने के लिए चल पड़ा। हम सीधे..........गाँव गए और..........पगी के यहाँ ठहरे। वहाँ ....के पगी थे, उनकी बरात भी..........पगी के यहाँ ठहरी हुई थी। ....पगी ने कहा—"यह बरात चार बजे चली जाएगी, फिर हम सब तलाश करने चलेंगे।" इसलिए शाम को बैलगाड़ी करके वहाँ से निकले। ६ बजे..........पहुँचे। थोड़ी-सी सुराग तो हमें मिली ही गई थी। हम....... गाँव की सरहद पर पहुँचे तब..........पगी गाँव में से भागा। वह रास्ते में मिल गया।..........पगी ने उसे पकड़ कर पूछा तो उसने कहा—"डी-एस-पी साहब हमारे गाँव में आ कर तलाशी लेने लगे, इसलिए मैं वहाँ से भागा हूँ।" हम उसे साथ लेकर इस गाँव में..........पगी के यहाँ पहुँचे..........पगी को भी बुलाया और उनसे..........पगी ने कहा—"मैंने तुम्हें यह सन्देश कहलाया था न कि चोरी करने वाले और चोरी का माल खुर्दबुर्द न हों ?" ....पगी ने जवाब दिया—"आपकी बात सही है। हम सब यहीं थे। लेकिन डी-एस-पी साहब यहाँ तलाशी लेने आए। इसलिए हम सब इधर-उधर भाग गये थे।

इसके बाद चोरी करने वाले के ससुर..........पगी से..........पगी ने कहा—"देखो, अब माल वापिस लौटा दो।" ....पगी ने कहा—"पर इसमें तो दूसरे भी शामिल हैं न ! उन्हें पूछ कर ही आपको जबाव देंगे।"

उसी रात को.......पगी और.........पगी.......गाँव में पहुँचे। वहाँ के दो व्यक्ति इस चोरी में शामिल थे। उनसे मिल कर माल वापिस दे देने का कहा। अन्त में उनसे पूछा—"इस चोरी में कौन-कौन थे ?" उन्होंने कहा— "दो.......गाँव के और दो.......गाँव के।" हमने पूछा—"इन चोरों ने चोरी

किसलिए की ? माल वापिस देने में क्या उन्हें आपत्ति है ?" उन्होने कहा—"चोरी हुई उस गाँव में हमारा पगीपना (चौकीदारी) था, उसे छुड़ा कर हमारे पर दूसरा पगी रखा। हमारा मेहनताना वाकी था, वह नहीं दिया। इसलिए हमें चोरी करनी पड़ी। वर्तमान में उस गाँव में जो पगी है, उसमें हमारा जो वकाया है, वहाँ हमें दे दे तथा आप सव रिपोर्ट में हमारे नाम न लिखाएँ तो हम चोरी का माल वापिस सौंप सकते हैं।" उनकी यह शर्त सुन कर हमने कहा—"तुम्हारा·······पगी में जो उचित वकाया होगा; उसे तुम्हें वह दे देगा। हम रिपोर्ट में तुम्हारा नाम नहीं लिखाएँगे। मगर चोरी के अपराध के लिए पुलिसतंत्र जो कुछ करेगा, उसमें हम उसे मदद नहीं करेंगे। वोलो, अव तो तुम्हें माल वापिस सौंपने में कोई हर्ज नहीं है न ?" उन्होने कहा—"हम सोच-विचार कर एक सप्ताह वाद जवाव देंगे।" हम वहां से रवाना हो कर·······गाँव आ गए।

हमारी सव वातों की गंध पुलिसविभाग में पहुँची। उन्होंने चोरों को पकड़ने और माल प्राप्त करने के लिए प्रयत्न शुरु किए। उनको नामों का पता भी लग गया। अतः एक ओर पुलिस की दौड़धूप और दूसरी ओर हमारी ओर से भी कार्यवाही चालू थी। दोनों काम एक साथ हो रहे थे। नतीजा यह आया कि हमारी कार्यवाही में पुलिस का प्रयत्न विघ्नरूप होता मालूम दिया। क्योंकि पुलिस के डर से चोरी करने वाले भागते फिरते; हमें वे मिलते नहीं। अगर मिलते भी तो उनके मन में हम पर विश्वास जमता नहीं था। इस प्रकार की रस्साकस्सी एक महीने तक चली।

अन्त में, मैंने पुलिसविभाग के एक अधिकारी से कहा—"आप जांच-पड़ताल वंद करेंगे, तभी चोरी करने वाले हमें माल वापिस देंगे। आपकी तलाश से वे लोग डर कर भागते फिरते हैं। उन्हें विश्वास नहीं होता और आप देर-सवेर उन्हें पकड़ भले ही लें; माल उनसे नहीं पा सकेंगे।"

मेरी वात को वे अधिकारी समझ गए। उन्होंने तलाश वंद की और हमें कहा—"आप जाँच करने के वाद जो भी हकीकत हो, उससे मुझे वाकिफ करते रहें।"

इसके वाद हमने प्रयत्न शुरू किया। इस सारी हालत से पू० मुनिश्री संतवालजी म० को वाकिफ किया। उनकी आवश्यक सलाह ध्यान में रख कर

हमने काम आगे चलाया ....गाँव में हम चार दफा गए और चोरी करने वालों से मिले; परन्तु कुछ भी परिणाम न निकला। इससे साथ चलने वाले भाई तथा रिश्तेदार घबराए। वे कहने लगे—"इस कौम पर विश्वास मत करना। ये हमें बनाते हैं। माल हड़प जायेंगे। देंगे कुछ नहीं।" मैंने उनसे कहा—"धैर्य रखिए। उतावल से यह काम होने वाला नहीं। हम प्रयत्न कर रहे हैं।"

इसके बाद..........गाँव में ३०-३५ पगी और २० अन्य व्यक्ति इकट्ठे हुए। बातें हुई। चोरी करने वाले पगियों तथा दूसरे पगियों ने कहा—"हम माल वापिस सौंप देंगे। परन्तु हमें पक्का विश्वास दिलाओ कि फरियाद में तुम्हें बचायेंगे।" हमने उन्हें विश्वास दिलाया कि 'तुम सब निश्चिंत रहो'। हम वचन देते हैं कि "फरियाद में तुम्हें बचायेंगे।" अब प्रश्न यह खड़ा हुआ कि माल किसके सामने वापिस देना ?" बातचीत के अन्त में पू० मुनिश्री संतबालजी महाराज की हाजिरी में माल सौंपने का सबने तय किया।

इन सब बातों की चर्चा हो रही थी, तभी...पगी, जो पगियों का मुखिया था, घबराया और कहने लगा—"चलो, फरियाद की है तो पुलिस को बुला लें और चोर यहीं हैं, ये कहाँ जायेंगे ? इतने अर्से से हमें हैरान कर रहे हैं। इसलिए.......से पुलिस को बुला कर इन्हें गिरफ्तार करवा दें।" मैंने कहा —"एक बार विश्वास देने के बाद विश्वासघात नहीं करना चाहिये। ईश्वर की जैसी इच्छा होगी, वैसा होगा।" अब चोरी करने वालों को हम पर विश्वास जमा। हमने उन्हें एक सप्ताह की मुद्दत दी और वहाँ से रवाना हुए।

एक सप्ताह की मुद्दत थी, इसलिए उन चोरों में से दो आदमी....पगी के साथ माल लेकर...गाँव में पू० मुनिश्री संतबालजी म० की सेवा में उपस्थित हुए। हम वहीं थे। हमें वह माल उन्होंने सौंपा। माल में बाँट-बिखेर होने के कारण गहने टूटे हुए थे। करीब २५०) रुपये खर्च हो गए थे। इसलिए जो भी माल मिला उसे ले कर हमें जिस गाँव में चोरी हुई, उस गाँव में आए। पुलिस-अधिकारी को इसका पता लगा। अतः वे आए और मुझे कहने लगे—"माल हमारे सुपुर्द कर दो। नाम तो (चोरों के) हमारे पास

आ चुके हैं। हम मजिस्ट्रेट के आगे इसे पेश करके थोड़ा-सा दण्ड दिलाकर छुटकारा करा देंगे।"

मैंने कहा—"माल आपके सुपुर्द नहीं किया जा सकता। अगर मैं माल आपको सौंप दूँ तो यह विश्वासघात कहलाएगा। उन लोगों को अब कोर्ट में न ले जाया जाय, यही बेहतर है। समाज की अदालत में जो ठोस काम होता है, वह वहाँ नहीं होता।" अधिकारी बोले—"इतनी बड़ी चोरी की फरियाद हम रद्द नहीं कर सकते। अगर माल नहीं सौंपोगे तो हम आप तथा····पगी पर हमारे काम में हस्तक्षेप करने की शिकायत (रिपोर्ट) करेंगे।"

मेरे मन में जरा-सी घबराहट हुई। मैंने मुनिश्री को यह हकीकत लिखी। उन्होंने लिखा—"हिम्मत रखो, घबराओ मत। माल तो मेरे सामने दिया है, अगर वे शिकायत करेंगे तो मेरे पर भी करेंगे। हमें तो सच-सच कहना है। मजिस्ट्रेट को जो कुछ करना हो, वे करें।" इससे मेरे में हिम्मत आई। मैंने माल पु० अधिकारी को नहीं सौंपा। अतः यह बात यहीं स्थगित हो गई।

इस घटना में एक महत्त्व की बात यह हुई कि चोरी में गहनों के अलावा नकद रकम जो २५०) की चली गई, जान रहे थे; वह रकम चोरों के हाथ नहीं लगी। चोरों की गफलत से वह रकम घर में ही रह गई। वह नकद रकम बाद में घर के किसी सदस्य के हाथ में आ गई थी, उसकी जानकारी मुझे नहीं हुई। अतः मैंने चोरी करने वालों से नकद रुपये माँगे तो उन्होंने कहा—"ये रुपये हमारे पास आए ही नहीं। वहीं घर में रह गए होंगे; वहीं तलाश कर लें। हमारे पास आए होते तो हम वापिस क्यों नहीं देते?" मुझे इन लोगों के कथन पर विश्वास हुआ। मैंने चोरी हुई उस गाँव में जाकर जाँच की। घर के सब लोगों से पूछा—"वे नगद रुपये चोरों के पास नहीं पहुँचे। यहीं घर में ही रहे हैं। ये नकद रुपये किसने रखे हैं, बताओ।" परन्तु किसी ने नकद रुपये घर में मिलने और रखने की बात स्वीकार न की। तब मैंने कहा—"रुपये घर में ही रहे हैं, जो जानता हो वह आज शाम तक मुझे कह दे। अन्यथा कल सुबह से मैं इस घर में पैर नहीं रखूँगा। सारी जिन्दगी का सवाल है। विचार कर लेना।" यों कह कर मैं अपने गाँव में पहुँचा। मेरे लिए सबके हृदय में प्रेम था। इसलिए हलचल

मच गई। शाम होने से पहले ही जिसने घर में रुपये रखे थे, उसने रुपये मिल जाने की वात मंजूर की। मुझे जान कर शान्ति हुई। एक कसौटी भी हुई। वाकी रहे हुए रुपये और गहने भी चोरों से मिल गए।

अव पुलिस-विभाग का काम वाकी रहा। सौभाग्य से पुलिस-अधिकारी प्रामाणिक, रिश्वत न लेने वाले और धार्मिक विचारों के थे। यह प्रश्न नैतिक-सामाजिक दवाव से हल हो गया, यह उन्हें वहुत अच्छा लगा। पर दूसरी ओर उनके सामने यह कठिनाई आ पड़ी कि अगर फरियाद रद्द करनी हो तो उन्हें डी.एस.पी की मंजूरी लेनी चाहिए। अन्यथा माल न सौंपने की हम पर फ़रियाद करनी चाहिए। इन दोनों में से क्या करना चाहिए ? इस उलझन में वे थे। अन्त में वे खुद पू० मुनिश्री संतवालजी म० से·······गांव में मिले और उनके सामने अपनी उलझन रखी। मुझे तथा·······पगी को वुलाए। हम गए भी सही, पर उन्हें मिल न सके। वरसात के कारण हम आगे-पीछे हो गए। मुनिश्री के साथ हमने इस सम्वन्ध में वात की। उन्होंने कहा—"अगर पुलिसविभाग तुम पर फरियाद करे तो सच्ची हकीकत कहना। माल हम नहीं सौंपेंगे, यह भी कहना। इसके वदले जो सजा दें उसे सहने को तैयार रहना। यह एक नया मार्ग है, इसलिए शुरू में थोड़ी कठिनाई पड़ेगी।

मैंने तथा ··········पगी ने इसके लिए अपनी तैयारी वताई और पुलिस को माल न सौंपना और चोरों के साथ विश्वासघात न करना; ये दोनों वातें महाराजश्री के सामने तय करके हम विदा हुए।

आखिर मुनिश्री का चातुर्मास···गाँव में था। वहाँ वे अधिकारी आये। उन्होंने हमें भी वुलाए। मुनिश्री की हाजिरी में उनके साथ हमारी स्पष्ट वातें हो गई कि—"माल हम सौंपेंगे नहीं। आप फरियाद करके हमें जो सजा देंगे उसे भोगने के लिए हम तैयार हैं। झूठ वोलेंगे नहीं और विश्वास-घात भी नहीं करेंगे।"

इससे उन अधिकारी पर अच्छा असर पड़ा। उन्होंने हाथ जोड़ कर मुनिश्री से कहा—"महाराजश्री ! यह कानून हमारे लिए कठिनाई पैदा-करता है। इसलिए हमें ऐसा करना पड़ता है। किन्तु मेरा हृदय कहता है,

जिन भाइयों ने रात-दिन मेहनत करके, जो काम पुलिस नहीं कर सकती, वह काम कर दिखाया है, तथा आप सरीखे संतपुरुष के सामने माल सौंपा है, उन पर मुझसे फरियाद कैसे हो सकती है ? ऐसी स्थिति में भी अगर मैं फरियाद करूं तो ईश्वर का अपराधी बनूंगा। मैं अपने ऊपरी अधिकारी को सच्चे हालात बताऊँगा। आप से जो भी इसमें मदद हो सके करना। ऊपरी अधिकारी को सत्य हकीकत समझ में आ गई तो परिणाम सुन्दर आएगा। बाकी तो ईश्वर की जैसी इच्छा होगी वैसा ही होगा।" यों कह कर गद्‌गद कंठ से वे हम सब से मिल कर तथा मुनिश्री को नमस्कार करके विदा हुए।

अन्त में, तीन महीने बाद डी. एस. पी. का हुक्म आया कि "वह फरियाद रद्द की जाय।" इस प्रकार चोरी की फरियाद रद्द की गई।

इस तरह यह प्रश्न नैतिक दृष्टि से हल हुआ। अपराधियों के दिल में विश्वास जमा। प्रेम और न्याय दोनों सुरक्षित रहे, यह सबके लिए आनन्द और संतोष का विषय था।

'अन्त में सत्य की ही जीत है', इस बात का यथार्थ परिचय मिला।

: २७ :
युवकशक्ति सच्चे मार्ग पर

[यौवन एक तीव्र शक्तिशाली अवस्था है। इस अवस्था में अगर सच्चे धर्मनिष्ठ हितैषियों का अंकुश युवकों पर न हो तो उनकी शक्तियों बुरे रास्ते चढ़ते देर नहीं लगती। सतत सावधानी रखने पर भी जवान स्वच्छंदता के पथ पर चढ़ जाते हैं। इस समय सच्चे हितैषी और निःस्वार्थ सेवक को तो उनका रोष सहन करके भी सत्य कहना चाहिये। कटुसत्य के पीछे यदि लबालब प्रेम हो तो उसका परिणाम सुन्दर ही आता है। एक सच्चे हितचिंतक द्वारा एक युवक को उसका रोष सह कर भी की हुई प्रेरणा अन्त में युवक के हृदय को हिला देती है, यह नीचे की घटना बता रही है।]

"अव तुम्हें मुझे कहने का क्या अधिकार है ?" यह वाक्य मेरे पुराने परिचित एक विद्यार्थी ने कहा।

यह विद्यार्थी संवत् १९९५ के अर्से में ......छात्रालय में मेरे पास अध्ययन करने आया था। ६-७ साल मेरे पास रहा। स्वभाव का अत्यन्त सरल, हर एक के साथ मिलनसार और दूसरों के लिए कुछ न कुछ कर गुजरने वाला था। यह मेरे प्रति अतीव श्रद्धा और पूज्यभाव रखता था। मुझे भी उसके सद्गुणों के कारण उसके विकास के लिए उसके प्रति अत्यन्त वत्सलता रहती।

उसके वाद मेरे पास अध्ययन पूर्ण हुआ तो वह विद्यार्थी दूसरे छात्रालय में जहाँ मेट्रिक तक का अध्ययन होता था, गया। वहाँ चार साल में अध्ययन पूरा करके वह अपने घर गया और कोई व्यवसाय शुरू करने की तैयारी में था।

यद्यपि वह मुझ से अव दूर रहता था। फिर भी मैं उसके जीवन के सम्वन्ध में यथाशक्ति सतर्क रहता था। मेरे मन में विचार आता—'मेरे पास वह रहा है, इसलिए मेरा कर्तव्य हो जाता है कि यह भाई दूसरे युवकों की तरह कुसंग में न लग जाय, या उलटे रास्ते न चढ़ जाय, अपना जीवन न्याय-नीतिपूर्वक भली-भाँति विता सके, इसकी सावधानी रखूं। इसलिए दूर रहते हुए भी मैं उसे वारंवार पत्र लिखता रहता, साल भर में ४-५ वार मिलता। इस प्रकार मुझे और उसे दोनों को संतोष रहता।

परन्तु घर जाने के वाद एक तालाव की खुदाई के काम में मिस्त्री के रूप में वह नौकरी पर लग गया। यों तो उसके घर की आर्थिक स्थिति खराव थी। परन्तु परिवार में कमाने वाला खुद ही होने से वह स्वतन्त्र था। उसे नौकरी में कर्मचारियों तथा दूसरे ऐसे साथियों की सोहवत मिली, जो रिश्वत खाने के पूरे आदी होंगे। अतः यह भाई भी उनकी सोहवत के कारण इस बुराई में फंस गया और जैसा कि सुनने में आया, उसने इस काम में लगभग ४००-५०० रुपये तक की रकम का गवन कर लिया। मुझे इस वात का पता लगा। इसलिए मैंने अपने कर्त्तव्य का विचार करके मेरी भाषा में मीठा उलहना लिखा। परन्तु वह उसे अच्छा न लगा और उसने मेरे खिलाफ पत्र-व्यवहार शुरू किया। उसे अव अपनी

इज्जत जाने का भी डर लगा, इसलिए क्रोधाविष्ट होकर उसने उपर्युक्त आशय के उद्‌गार निकाले।

फिर भी मैंने अपना कर्तव्य अदा करने का पुरुषार्थ जारी रखा। मैंने उसे थोड़ा-सा कड़वे औषध-सा भी इस बुराई के रोग को मिटाने के हेतु पिलाया। इसमें मेरा उसके प्रति कोई स्वार्थभाव या द्वेषभाव नहीं था। मैंने उसे सुधारने की दृष्टि से ही निखालिस दिल से लिखा था। परन्तु उसके बाद उसने मेरे साथ एक साल तक पत्र व्यवहार बंद रखा।

परन्तु सत्य कड़वा होते हुए भी निःस्वार्थभाव से कहा गया हो तो अन्त में समझ में आता ही है। इस मामले में भी प्रभुकृपा से ऐसा ही हुआ। उस भाई के हृदय में मेरी बात जची, सच्ची लगी। उसके बाद मुझे उसने पत्र लिखा, जिसका सारांश इस प्रकार है—

"पू० भाई! आप मुझे क्षमा करना। मैंने आपको बहुत दुःख दिया है। पर आप तो उदार हैं। मैं आपका ऋणी हूँ। आपने मुझे एकाद वर्ष पहले हुई घटना के निमित्त से जो कड़वी औषधि पिलाई थी, वह यदि उस समय न पिलाई होती तो आज मेरी दशा न जाने कैसी होती। मुझे उस समय ऐसा लगता था कि मैं कितने आनन्द से विकसित हो रहा हूँ; किन्तु आपके अभागे दौरे ने मुझे जकड़ रखा है मुझे ऊँचे उड़ने में यह दौरा रोक रहा है। पर आज जब मैं उस पर विचार करता हूँ तो मुझे लगता है कि यदि उस आपकी प्रेरणा ने मुझ पर इतना कब्जा न किया होता तो न जाने मैं उड़ कर कहाँ गिर पड़ता! मैं समझता हूँ, मैं चकनाचूर हो जाता। भाई! आपने मुझे बचाया है। पुनः आप से क्षमा मांग लेता हूँ। मुझे बार-बार मार्गदर्शन देते रहने की कृपा करना। मेरे योग्य कोई कार्य-सेवा हो तो लिखने की कृपा करना।"

मैंने अपने सभी प्रयत्नों के लिए प्रभु की दया मानी और प्रभुकृपा से मुझे इस भाई को कड़वी दवा पिलाने की अन्तःप्रेरणा न हुई होती तो यह भाई उलटे रास्ते चढ़ जाता। आज यह भाई एक सामाजिक संस्था: योजना में सुन्दर काम कर रहा हैं और अत्यन्त भावनापूर्वक समाजरचना का काम करते हुए अपनी जीवन में प्रगति कर रहा है। मेरे प्रति इस भाई का अब भी

श्रद्धाभाव और पूज्यभाव है। वह वार-वार अपने जीवन के वृत्तान्त मुझे लिखता रहता है।

अपने पुरुषार्थ से सींचे हुए पेड़ के फलों को देखकर किस माली को प्रसन्नता नहीं होती ?

: २८ :

आप जनता की सेवा के लिए हैं !

[राजकर्मचारी समाज को सेवा के लिए नियुक्त किये जाते हैं। पर जब वे समाजसेवा के वदले समाज की धर्मभावनाओं को आघात पहुँचाने का काम करते हैं, तव वे समाज के अपराधी बनते है। ऐसे समय में समाज या समाजसेवक जागृत हों तो वे एसे दुष्कृत्यों को रोक सकते हैं। नीचे का प्रसंग एक पुलिस-अधिकारी द्वारा की हुई गलती से समाजसेवक और ग्रामीणसमाज कैसे जागृति हो कर उसे अपनी गलती का स्वीकार करने के लिए प्रेरित करता है ? इस विषय में प्रेरणादायक हैं।]

लगभग १२ मील दूर के एक गाँव की वात है। वहाँ एक पुलिस-अधिकारी आए। रात को वे उस गाँव की धर्मशाला में ठहरे। 'हमारी हत्या यहाँ नहीं होगी, इस प्रकार का सुरक्षित एवं भय-रहित स्थल मान कर कबूतर उस धर्मशाला में निश्चितता से आश्रय लिये हुये थे। परन्तु रात को उस पुलिस अधिकारी ने अपनी पिस्तौल से एक कबूतर का शिकार करके उसी गाँव में रहने वाले एक आसामी के यहाँ उसका मांस पकवाया और खाया। मनुष्य अपनी जीभ के स्वाद के वश होकर दूसरों के प्राणों की ओर जरा भी नहीं देखता और निर्दय वन जाता है। इसी का यह एक नमूना है। गाँव के अमुक लोगों इस वात का पता लगा तो उनकी धार्मिक भावनाओं को वहुत ठेस लगी। उन्हें ऐसा लगा कि कबूतर सरीखे निर्दोष पक्षियों की और वह भी धर्मशाला जैसे अभयप्रद स्थान में एक अधिकारी कहलाने वाले व्यक्ति के हाथ से हत्या

हो यह समस्त ग्रामजनों के लिए अत्यन्त विचारणीय वस्तु है। गाँव के लोगों को ऐसे पुलिस-अधिकारी के खिलाफ कोई कदम उठाना चाहिए। ग्रामीण लोग चाहते तो ऐसा ही थे, मगर सभी इस बारे में घबरा रहे थे कि शायद अधिकारी हमें कानून के जाल में फंसा कर जेल न भेज दे। परन्तु एक भाई के हृदय में इस बात के लिए बहुत उफान आया। जैसा कि मैंने सुना है; उसने कहा— "मेरा जो कुछ होना हो जाय; पर मैं इस प्रश्न को चुपचाप नहीं छोड़ सकता। पुलिस-अधिकारी को अपनी गलती का पश्चाताप करना ही चाहिए और की हुई गलती के बदले जनता से माफी मांगनी चाहिये। तथा भविष्य में फिर कभी ऐसा पाप नहीं करने का संकल्प करना चाहिये।" ऐसा विचार करके वह भाई अपने साथ गाँव के ४-५ भाइयों को ले कर मेरे पास आए। उन्होंने अत्यन्त दुःखित हृदय से पुलिस-अधिकारी द्वारा लिये गए शिकार की और मांस पकाकर खाने की बात कही। उन्होंने मुझे यह भी कहा कि इसके लिए कुछ न कुछ उपाय जरूर करना चाहिए।" इसलिए मैंने पुलिस-अधिकारी से मिलने का विचार किया।

उसी दिन शाम को वह पुलिस-अधिकारी मुझ-से मिले। ग्रामजनों द्वारा कही हुई बात मैंने उन्हें बताई और इस सम्बन्ध में उनसे जवाब मांगा। कुछ देर तक तो वे गुस्से में आगबबूला होते रहे, मैंने उनसे निर्भीकतापूर्वक कहा—"आप जनता की सेवा के लिए हैं। अगर आप सेवा के बदले जनता की कोमल धर्म-भावनाओं को ठेस पहुँचाएँ और उसका अहित करने लगे, तो यह आपके लिए अच्छा नहीं है। गाँव के लोगों को भोलेभाले समझ कर आप इस बात की अवगणना नहीं कर सकेंगे। गाँव के लोग जागृत हैं। वे इस भूल को नजर-अंदाज नहीं करेंगे। इसलिए अब आपको अपनी गलती स्वीकार किये बिना कोई चारा नहीं है। मैं आपको एक छोटे भाई के रूप में आपका हितैषी बन कर यह बात कह रहा हूँ। आप मेरी बात पर ध्यान नहीं देंगे तो मुझे लगता है, आपको पछताना पड़ेगा। अतः आप अपनी की हुई गलती के लिए पश्चात्ताप करें और आए हुए ग्रामजनों से इस बारे में माफी मांगे तथा भविष्य में ऐसा नहीं करने का स्वीकार करके इन भाइयों को संतुष्ट करें।"

पुलिस-अधिकारी को मेरी बात समझ में आ गई। उन्होंने तुरन्त अपनी की हुई गलती का स्वीकार किया, गलती के लिए क्षमा मांगी और यह विश्वास

दिलाया कि अब मैं किसी भी गाँव में जाऊंगा तो वहाँ ऐसा काम नहीं करूंगा"। इससे सबको संतोष हुआ। पुलिस-अधिकारी भी अपराध का बोझ दूर कर अत्यन्त हलके हुए।

आज भी जब-जब मुझे यह पुलिस-अधिकारी मिलते हैं तब-तब बड़े प्रेम से हँसते-हँसते मिलते हैं। उनके मन में इस सम्बन्ध में किसी प्रकार का द्वेष का अंश रहा हो, ऐसा मुझे अभी तक प्रतीत नहीं हुआ।

इस घटना से गाँव के लोगों को भविष्य में ऐसे दुष्कृत्य को चुपचाप नहीं सहने का तथा निर्भयतापूर्वक बेधड़क अपनी बात कहने का एक सुन्दर बोधपाठ मिल गया।

: २९ :
मैं तो सच्ची बात ही कहूंगा !

[प्राचीनकाल में मुनियों के आश्रम के आसपास या आश्रम की सीमा के अंदर कोई भी व्यक्ति किसी जानवर का शिकार नहीं कर सकता था। मुनियों का इतना गजब का प्रभाव था। आज लोकतंत्रीय शासन के युग में गाँवों में भी अगर लोकसेवक और गाँव जागृत हों तो कोई भी मनुष्य गाँव की सीमा में या गाँव के इर्द गिर्द शिकार नहीं कर सकता। भूलचूक से यदि कोई गलती कर भी बैठे तो गाँव के जागृत लोग निर्भयता पूर्वक उससे अपना गुनाह कबूल करवा कर हार्दिक पश्चात्ताप कराते हैं। मगर आज गाँवों में कोई सरकारी अधिकारी आ कर अनिष्ट करने लगे या शिकार करे तो भी गाँव के लोग प्रायः उसे कुछ कहने में डरते हैं या चुपचाप सह कर उपेक्षा कर बैठते हैं; सच्ची बात कहने की उनमें प्रायः हिंमत नहीं होती। जब कि इस गाँव में हुई शिकार की घटनामें लोक-सेवक के सहयोग से एक निर्भीक किसान ने सरकारी अधिकारी से बेधड़क सच्ची बात कहने की हिंमत की; उसका कैसा सुन्दर परिणाम आया है, नीचे की घटना में पढ़िए।]

"यहाँ कुछ दिन पहले एक साहब मोटर लेकर आये। उनके साथ दूसरी आदमी भी थे। उन्होंने तेजी से मोटर दौड़ाई और सहसा ३-४ निर्दोष हिरनों को गोली से बींध डाले। परन्तु भाई साहब ! ऐसे साहब को इसके लिए कौन कह सकता है ? सरकारी बसें इस रास्ते पर चलती हैं। उनके पास मोटर थी। वे साहब कौन थे ? इसका मुझे पता नहीं। पर उनके साथ जो आदमी थे, उन्हें मैं पहिचानता हूँ। इन बेचारे निर्दोष जीवों की हत्या हम अपनी इन आँखों से देखते रहें और इसके लिए अपराधी को कुछ भी न कहें यह मुझे बहुत खटकता है। अगर आप सरीखे कोई कार्यकर्ता इसे बंद कराने की कोशिश करें और आयंदा ऐसा न हो, इस प्रकार की कुछ बात बने तो मुझे संतोष हो।"

इस प्रकार मुझे कहने वाला गाँव का एक भोलाभाला किसान था। मैं उस किसान की बैलगाड़ी में बैठ कर एक गाँव से दूसरे गाँव जा रहा था। मेरा दिल देख कर उसने पहले तो अपने परिवार की गरीबी की रामकहानी कही। मुझे उसका दिल साफ लगा। साथ ही उसके हृदय में दया की भावना भी मालूम हुई। मेरी सहानुभूति पा कर धीरे-धीरे उसका हृदय खुलता गया। उपर्युक्त बात को कोई जान न पाए, इस प्रकार मन में डरते-डरते उसने मुझसे कही।

मैंने उसकी दयाभावना की कद्र करते हुए कहा—"तुम्हारी यह कोमल सद्भावना देख कर मैं एक बात पूछ लूं—"अगर मैं शिकार करने वाले उस भाई का पता लगाऊँ और कुछ उपाय करूं तो तुमने मेरे सामने जो बात कही, उसे तुम शिकारी के सामने हूबहू कह दोगे ? अथवा मुझे जो आधार चाहिये, उसके लिए तुम मुझे सच्चा विवरण लिख कर दे सकोगे ? अगर तुम्हें लिखना न आता हो तो तुम जिस प्रकार कहोगे, उस प्रकार मैं लिखता जाऊँगा, तुम उस पर अपना अंगूठा या दस्तखत कर दोगे; डरोगे तो नहीं ?"

यह सुन कर उस किसान ने कहा—"आप जब हमारे पृष्ठपोषक हैं और विश्वास दिलाते हैं तो फिर मुझे सच्ची बात कहने में डर किसका ? बेचारे निर्दोष प्राणियों को वे लोग इस तरह मार डालें, इसे कैसे सहा जा सकता है ? आप जहाँ भी आने का कहेंगे, मैं वहाँ आ जाऊँगा। मैं जैसे कहूँ,

उस प्रकार आप लिखते जांय, मैं उस पर अपने दस्तखत कर दूंगा।" फिर उसने इस प्रकार लिखाया—

"........गाँव की ओर जाने वाली सड़क पर से एक सरकारी बस नीचे के रास्ते पर उतरी। उसमें ३-४ व्यक्ति बैठे थे। कुछ ही दूर पर हिरन घूम रहे थे। इन लोगों ने उन पर गोलियाँ छोड़ीं। ३-४ बार गोलियों के धड़ाके से उन्होंने हिरनों को मार डाले। फिर उन्हें मोटर में डाल कर ले गए। जिस जगह गोलियां छोड़ी गई थीं, उस जगह खून के छींटे भी मौजूद हैं और मोटर के पहियों के भी चिह्न भी पड़े हुए हैं। इन लोगों ने जब गोलियाँ छोड़ीं, तब मैं अपने खेत में अनाज के पौधों के डंठलों को उखाड़ रहा था। मेरे मन में बार-बार यह विचार आता था कि मैं दौड़ कर वहाँ पहुँच जाऊँ। बेचारे निर्दोष प्राणियों को ये निर्दयी क्यों मार रहे हैं? ऐसा विचार तो आया; मगर वहाँ जा कर उन्हें (शिकारियों को) रोकने की मेरी हिम्मत न हुई। मैं अभागा वहाँ न पहुँच सका। ये लोग ३-४ हिरन मार कर ले गये। उनमें एक तो बड़ा कालियार हिरन था। मैंने जो कुछ आँखों से देखा, वही लिखाया है।

हस्ताक्षर

....

इस पत्र पर उस किसान के हस्ताक्षर करवा कर मैंने इसे ले लया और स्वयंजांच करने निकल पड़ा। इस पत्र में लिखाई हुई बातें बिलकुल सत्य निकलीं।

इसके बाद मैं........गाँव में पहुँचा और गाँव के लोगों से मैंने यह बात कही। उन्होंने मुझे इतना तो कहा कि यहाँ से एक मोटर तो निकली थी, परन्तु उस गुनहगार अधिकारी के पास चल कर कहने के लिए कोई भी तैयार न हुआ। उलटे, कुछ लोग तो यों भी कहने लगे—"अब मरने दो न उसे? जानबूझ कर हम क्यों ऐसी निकम्मी 'आ बैल सींग मार' वाली बात में पड़ें! यह तो अन्धे को न्यौता दे कर दो को खिलाने के समान है।" ऐसे लोग उक्त किसान को भी उलहना देने लगे—"इसमें तुझे क्या पड़ी है? तेरे बाप का क्या बिगड़ता है इसमें कि तू आगे हो कर यह रिपोर्ट लिखा रहा है?"

उस किसान ने उन्हें दृढ़ता से जवाब दिया—"जो होना हो सो हो; मैं तो सच-सच कहूँगा और मैंने जो वात लिखाई है, उसपर मैं अन्त तक टिका रहूँगा।"

इसके वाद मैं और दूसरे कार्यकर्ता भाई सरकारी वस-सर्विस के अधिकारी से मिलने गए। परन्तु वे उस समय वस-स्टेंड पर थे नहीं। मुझे तो···से तुरन्त अन्यत्र जाना जरूरी था। इसलिए मैं अपने साथी कार्यकर्ता भाइयों को यह काम सौंप कर चल पड़ा।

वे कार्यकर्ता भाई उक्त वस अधिकारी से मिले और इस प्रश्न के सम्वन्ध में उनसे पूछताछ की। उन्होंने तुरंत कहा—"मुझ से यह गलती हुई। मैं अपनी गलती मंजूर करता हूँ और आप जो दण्ड देंगे उसे सहन करने को मैं तैयार हूँ। तथा मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि भविष्य में ऐसी भूल कभी नहीं करूंगा।"

कार्यकर्ता भाइयों को लगा कि 'जव यह भाई अपनी गलती का नम्रभाव से स्वीकार करता है तव इन्हें और कुछ दण्ड न दे कर उपालम्भ देना ही वस होगा।"

इसलिए कार्यकर्ता भाइयों ने उन्हें उपालम्भ दे कर विदा किया।

: ३० :

माता के सिर पर अपनी लोलुपता क्यों चढ़ाते हो ?

[भारत के गाँवों में अव भी अन्धश्रद्धा वहुत अधिक मात्रा में है। देव-देवी के नाम से यहाँ भोलेभाले लोगों को फुसला कर निर्दोष जानवरों की हत्या की जाती है और पाखडी लोगों की लोलुपता पोसी जाती है। लेकिन इसके वजाय वहाँ ग्राम्यजनों में रही हुई अज्ञानता को दूर कर उनमें जनहितैषी सच्चे सेवकों द्वारा नैतिक शक्ति पैदा की जाय तो वे देव-देवी के नाम से होने वाली जीव हिंसा करने वाले भोपों या पुजारियों का झूठा पक्ष छोड़ कर सच्ची वस्तु समझ जाते हैं। परन्तु

उन तथाकथित भोपों और पाखंडियों के ढकोसलों या दम्भों का पर्दाफाश करने वाला व्यक्ति स्वयं अपने आप में मजबूत सत्याग्रही और अहिंसक होना चाहिए। तभी गाँवों से धर्ममय समाजरचना में बाधक अन्ध-विश्वास दूर किया जा सकेंगे। नीचे की घटना इसकी प्रतीति करा देती है—]

"माता के नैवेद्य के लिए जीव हिंसा होने वाली है, अतः चैत्र सुदी छठ के दिन जहां हो, वहाँ से जल्दी यहाँ आ जाना।" इस प्रकार का पत्र एक अन्दर के गाँव में से मिलते ही एक किसान को ले कर मैं उस गांव में पहुँचा। वहाँ जांच करने पर रात को किसी खास व्यक्ति का पता न लगा। बाकी, यह खबर तो पक्की मिल गई कि यहाँ देवी के नाम से हिंसा होने वाली है। पैसों का चन्दा भी इकट्ठा कर लिया गया है। होमे जाने वाले जीवों को खरीदने के लिए शायद अमुक आदमी दूसरे गाँव गये हों, ऐसा मुझे लगा। सवेरे खोज करने पर पता लगा कि लगभग १८ घर के एक कुटुम्ब की माता के आगे ऐसा अनिष्टकर्म (पशुबलि) करने के लिए माताजी का एक भोपा तैयार हो चुका है।

मैं इस भोपे के यहाँ पहुँचा। रास्ते में एक युवक मिला। मेरे साथ चल रहे किसान ने उस युवक से कहा—"हमें भोपे से मिलना है। और इन सभी घरों के आदमियों को एकत्रित करना है। भोपे का घर कहाँ है ?" उसने सुनते ही भोपे का घर तो नहीं बताया सो नहीं बताया; उलटे गुस्से में आकर उछलने लगा—"हमें इकट्ठे नहीं होना है; जाओ। तुम्हें इस काम में सिर खपाना नहीं चाहिये। हम तो माता को नेवैद्य चढ़ायेंगे, चढायेंगे और चढ़ायेंगे ही।"

इतने में तो इस माता का पुजारी एक बाघरी मिला। उसने कहा—"चलो, मैं आपको भोपे का घर बतायें। माता जीव मांगेगी तभी बलि दिया जायगा।"

हम भोपे के घर पहुँचे। भोपे ने तुरन्त कहा—"देखो, पहले मैं जीवों को होमता था। पर अब इस युग को मैं पहिचान गया हूँ। हमारे नाम से झूठमूठ बहका कर तुम सरीखे भोलेभाले लोगों को किसी ने चक्कर खिलाया है।"

इस प्रकार उसने उस बात को साफ उड़ा दी। पर मुझे भोपे की बात पर विश्वास नहीं हुआ। इसलिए मैंने भोपे से कहा—'मुझे इस सम्बन्ध में लिखने वाला झूठ कदापि नहीं लिख सकता। साथ ही, एक बात मैं तुमसे कह दूं—"माता तो जगत् के सभी प्राणियों की माता है। वह अपने पुत्रों को—जीवों को—खाती नहीं। इसलिए वह कभी जीवों की वलि (हत्या) मांगती ही नहीं है। इसलिए मेरी नम्र विनति है कि तुम इस धंधे को छोड़ दो।"

यह सुनते ही भोपा तन कर बोला—"इस माता का वर्षों पुराना मैं एक ही भोपा हूँ। माता से मैंने बाँझ स्त्रियों को पुत्र दिलाए और दुःखी माताओं के दुःख मिटाए। इन १८ कुटुम्ब के सभी लोगों से पूछो। तुम्हें विश्वास हो जायगा। इसलिए माता की मांग तो पूरी करनी ही पड़ती है ?

बेचारे भोले लोग क्या जानें कि बलि माता को चाहिये या धूर्त भोपों को ? अधिकांश लोगों को जीवहिंसा पसंद नहीं होती। परन्तु भोपे पर उनका विश्वास गजब का था। वहाँ भोपों का विरोध कौन करे ? जहाँ वहमी और पामर जनता हो, वहाँ धूर्त भोपों के ढकोसले सरेआम चलें, इसमें आश्चर्य ही क्या ? भोपे ने अहंकार का दम भरते हुए कहा—"यह मेरी माता सच्ची हो तो तुम्हें चिट्ठी लिखने वाले का छह महीने में सत्यानाश कर डालेगी। वहाँ तक मुझे तो अब माता को कुछ नहीं चढ़ाना है।" यों बड़बड़ाता हुआ वह गुस्से से तमतमा उठा। मैंने पूछा—"माता कभी जीव मांगती होगी ? तुम्हारी जिह्वा-लोलुपता माता के सिर पर क्यों चढ़ाते हो ?"

बस, फिर तो पूछना ही क्या ? भोपा आगबबूला हो कर कहने लगा-इस रक्त का प्याला हजम करना आसान नहीं है। ८ दिनों में जिस खून का एक बूंद भी नहीं पचा सकता, माता की मर्जी से उसके प्याले के प्याले पचा सकता हूँ; समझे न ?"

मैंने गाँव के लोगों को मेरे तरीके से समझाए और इस ढोंग को दूर करने के लिए उनका सहयोग मांगा। गाँव के लोग अत्यन्त दृढ़ हो गए और आमसभा में उन्होंने घोषित किया—'चाहे जो कुछ हो जाय, पर हम इस पाप को इस गाँव में नहीं होने देंगे। इस गाँव से चोरी गई तो माता के नाम से भोपे की धूर्तता से होने वाली जीवहत्या भी जरूर जाएगी।'

आठवें दिन जब मैं आसपास के गाँवों में घूम कर फिर वहाँ गया। उससे पहले ही ग्रामजनों से एक सरकारी अधिकारी ने कहा—"कानून की दृष्टि से मैं इस काम में पुलिस वगैरह की मदद तुम्हें दिला सकता हूँ।" इस बात का पता चलते ही मैंने अदब से उक्त अधिकारी से कहा—"प्रभु की दया और समाज के नैतिक दबाव के सिवाय मुझे दूसरी किसी मदद की जरूरत नहीं है।"

अब तो गाँव स्वयं ही पूर्णरूप से अडिग हो चुका था। इसलिए समाज का पर्याप्त नैतिक दबाव पड़ चुका था। उन १८ घर के परिवारों में से बहुत से परिवार अन्तर से जीवहिंसा के लिए नाराज ही थे। इस प्रकार सारी अनुकूलता के कारण यह जीवहत्या रुकी।

: ३१ :

आज से हम मुर्दा-मांस नहीं खायेंगे !

[चातुर्वर्ण्य समाज में पूर्वकाल में चारों वर्णों को संस्कारी बनाया जाता था। परन्तु जब से ब्राह्मणवर्ण की नैतिक चौकीदारी शूद्रवर्ण पर नहीं रही, उसे धर्मशास्त्र सुनने और संस्कार ग्रहण करने से वंचित रखा गया, तब से उसमें खोटे संस्कार घुसने लगे। समाज के लिए यह भारी कलंक था। इसे मिटाने के लिए महात्मा गाँधीजी ने अपनी जिंदगी खपा दी। अब इस युग में नये ब्राह्मण (रचनात्मक कार्यकर्त्ता) यदि सच्चे दिल से उन्हें जगाएँ और सुसंस्कार दें तो एक समय के शूद्र कहे जाने वाले वर्ण में खानपान की बुराइयों और कुसंस्कारों को वे दूर कर सकते हैं। इसका सच्चा उदाहरण नीचे की घटना द्वारा हम पेश कर रहे हैं—]

"मांसभोजन मनुष्य के लिए नहीं है। उसमें भी मरे हुए ढोर का मांस तो अत्यन्त नुकसान करने वाला है। मुर्दा माँस खाने से तो तुम्हारी बुद्धि बिगड़ती है, पैसे बिगड़ते हैं, तुम्हारा पेट बिगड़ता है और मांस सड़ा हुआ होने से वह तामसी भोजन मनुष्य के मन में अच्छे विचार पैदा होने में

विघ्नकारक होता है। मुर्दा मांस खाने से सुसंस्कारी समाज में तुम्हारी इज्जत नहीं रहती। सवर्ण लोगों के मन में तुम्हारे प्रति घृणा हो जाती है। अतः तुम अपना और अपनी जाति का हित सोच कर आज से मुर्दा मांस नहीं खाने का निश्चय करो।"

· · · गाँव में हरिजन वास में प्रार्थना के बाद हरिजन भाइयों से मैंने उपर्युक्त बात कही। इस प्रकार उन्हें मुर्दे मांस से होने वाली हानि समझाई। उनके दिल में मेरी बात बैठ गई। उनके हृदय पिघल गए। और तुरन्त ही सभा में खड़े होकर लगभग ३६ बहनों और करीब ३७ हरिजन भाइयों ने प्रतिज्ञा की—"आज से हम मुर्दा मांस नहीं खायेंगे।"

धीरे-धीरे इस प्रतिज्ञा का असर चारों ओर हरिजनवास में फैला। सभी हरिजन फिर सभा के रूप में इकट्ठे हुए। और सारे हरिजनवास ने मिल कर ऐसा प्रस्ताव पास किया—"आज से इस हरिजनवास में कोई भी व्यक्ति मृत पशु के मांस का सेवन नहीं करेगा।"

इस गाँव के हरिजनवास के भाई-बहनों द्वारा किये हुए संकल्प का चेप दूसरे गाँव के हरिजनवासों और भंगीवासों को भी लगा और अनेक लोगों ने मुर्दा मांस छोड़ने का संकल्प किया।

कुछ ही दिनों पहले मैं · · · गाँव जा रहा था। इसी बीच एक युवक हरिजनभाई मुझे मिला। उसने मुझे खड़ा रख कर पूछा—"मुझे पहिचानते हैं?" मैंने कहा—"नहीं! मुझे तो याद नहीं आ रहा है। तुम्हें कहीं देखा होगा।" तब उसने कहा—"आप लगभग ६ महीने पहले यहाँ आए थे। तब मैं आपको बापू की बैलगाड़ी में बिठा कर बावला छोड़ने ही आया था? उस समय आपने मुझे मुर्दा मांस छोड़ने की प्रतिज्ञा नहीं दिलाई थी? सूर्य-नारायण के सामने आपने मुझे हाथ जुड़ा कर संकल्प कराया था। उस दिन से मैं मुर्दा मांस सेवन नहीं करता। मेरे घर में भी मैं सबसे इन्कार करता हूँ। परन्तु किसी दिन मैं घर में नहीं होता, उस दिन वे लोग गुपचुप ले आते हैं। बाकी, मैं तो जब से आपने प्रतिज्ञा दिलाई तब से इसका सेवन नहीं करता।"

मैंने पूछा—"इस प्रतिज्ञा से तुम्हें कोई नुकसान हुआ है?" उसने कहा

—"नहीं, नुकसान किस वात का होता ? उलटा, मुझे तो वहुत फायदा हुआ, है। पेट की सव बीमारी चली गई।"

इसके वाद हम अतीव प्रेम से विदा हुए।

: ३२ :

मन की तनातनी

[गाँव के लोग कई दफा छोटी-सी तुच्छ बात को पकड़ कर उस पर से उत्तेजित हो उठते हैं और गलत कदम उठा लेते हैं। ऐसे समय में यदि उन्हें योग्य आश्वासन देने वाला कोई हितैषी पुरुष मिले तो वह उनकी शक्ति का सदुपयोग कर सकता है और उनकी गाड़ी को उलटे रास्ते चढ़ने से रोक सकता है। यह काम बड़ा कठिन है। जिसमें जवान खून को मन की तनातनी के समय सीधे रास्ते लाना बहुत मुश्किल है। मगर समाजसेवकों की कसौटी ही ऐसे समय में होती है। समाजसेवक ने एक उत्तेजित हुए युवक को आश्वासन देकर दोनों पक्षों को समझा कर प्रश्न को शान्तिपूर्वक कैसे निपटाया ? यह नीचे की घटना वता रही है।]

"क्यों भाई ! वात क्या है ? यों क्यों दौड़ना पड़ रहा है ? जरा रुक कर मेरी वात तो सुनो ! तुम्हारी उलझन क्या है ?"

उपर्युक्त शब्द मैंने एक युवक से कहे; जो हाँफता-हाँफता दौड़ा जा रहा था। मैं उस समय दूसरे गाँव जा रहा था, वह भी · · गाँव से आ रहा था। इस युवक को मैं पहिचानता था। मैंने उसे खड़े रखा। यद्यपि उसे खड़ा रहना जरा भी अच्छा नहीं लगता था। परन्तु मेरे साथ परिचय होने से तथा उसको मेरी सहानुभूति मिलने से वह रुक गया। मैंने उसे अपने तरीके से धैर्य से पूछा। काफी देर तक तो उसने जवाव ही नहीं दिया। फिर जव उसका श्वास स्थिर हुआ, मन में धैर्य आया, तव उसने मुझसे कहा—"भाई ! आपको मैं अपना

वड़ा भाई मान कर मेरे पेट की वात कह रहा हूँ। आप किसी से नहीं कहेंगे, इसकी मुझे प्रतीति है। मेरे गाँव के अमुक-अमुक दो व्यक्ति मेरे साथ काफी अर्से से दुश्मनी रखते हैं। मैं उन्हें जिंदे नहीं रहने दूंगा। वे मुझे मार डालने की योजना वना रहे हैं। वे मुझे मारें, इससे पहले ही मैं उनके प्राण ले लूंगा। मुझे अव तक इन्होंने वहुत सताया है। इसलिए मैं अव इन्हें छोड़ूंगा नहीं। मुझे इन्होंने दुःखी कर डाला है। इसलिए मैं भी इन्हें मार कर ही दम लूंगा।"

यों कह कर उसने तो फिर दौड़ लगाने की शुरुआत की। मैंने उसे हाथ पकड़ कर रोके रखा और कहा—"भाई ! तू जरा धीरज रख। यों अधीर हो कर तू कोई अघटित काम मत कर वैठना। यदि ऐसा कोई उलटा काम हो गया तो जिंदगीभर तुझे उसका पछतावा होगा। दूसरों को मार कर या मारने का विचार करके हम इसी तरह तो हैरान होते हैं ! तुझे किसी को मारने का सूझता है तो तू अपने क्रोध को मार। चल, मैं तेरे साथ .... गाँव में चलता हूँ। उन सवको मुझे उलहना देना है। तू मेरे साथ चल।"

यों कह कर मैं उस युवक भाई को अपने साथ .... गाँव में ले गया उसे खूव ही शान्त किया। अव युवक का क्रोध अच्छी तरह शान्त हो गया था।

फिर उसने मुझे जमीन के वारे में झगड़े की वात कही। काफी समय पुराना झगड़ा था। उसमें वांटना-करना कुछ भी नहीं था। सिर्फ मन की तनातनी थी। मैंने लोगों से इस वारे में सव कुछ पूछताछ कर पता लगा लिया था।

इसके वाद मैं .... गाँव में गया और इस प्रश्न से सम्वन्धित लोगों को इकट्ठे किए। दूसरे गाँव से कुछ समझदार भाइयों को भुलाए। फिर मैंने सवको समझाया—"भाइयो ! इस प्रकार से वैर रखने से समाज में अनेक वुराइयाँ पनपती हैं। युवकों की शक्ति ऐसे झगड़ों-टंटों में फिजूल नष्ट हो जाती है, फिर वे समाज के अच्छे कार्य करने से रुक जाते हैं। इसलिए ऐसे झगड़ों और वैर-विरोधों का शीघ्र ही निपटारा कर लेना चाहिए। काफी समय तक ऐसे वैर-विरोधों से टिके रहने से एक छोटी-सी तुच्छ वात परस्पर खून-खच्चर तक पहुँच जाती है। और जो हृदय फट जाते हैं, वे अन्त तक जुड़ते नहीं।"

इस प्रकार एक दूसरों को भलीभाँति समझाया और जिनकी गलती लगी, उन्हें दो शब्द कहे भी सही। अन्त में, लोगों को अपनी गलती समझ में आई और एक दूसरे के मन की तनातनी मिटी। सबने वहीं के वहीं बैठकर मीठे मुँह किये।

उस युवक का चेहरा, जो एक समय झनूनी बना हुआ था, अब प्रसन्नता से खिल उठा। गाँव के लोगों को इससे खूब संतोष हुआ और आनन्द की लहरें उठने लगीं।

: ३३ :

किसान-गोपालक-युद्ध

[आज गोपालकों की स्थिति बहुत ही खराब है। वह इसलिए है कि वे पुरानी कुरूढ़ियों को छोड़ना नहीं चाहते, अपने लड़कों को पढ़ाते नहीं, निरर्थक कामों में फिजूल खर्च करते है, या तो इनके पास बिलकुल जमीन नहीं है, या है तो अत्यन्त छोटा-सा टुकड़ा। गोचरभूमि भी बस्ती बढ़ जाने के कारण घटती जा रही है। ऐसे समय में गोपालक अपने पशुओं को दूसरों के खेतों में चरने को घुसा देते हैं। किसान की इससे कितनी हानि होगी, इसकी चिन्ता उन्हें जरा भी नहीं होती। किसान भी आवेश में आ कर लड़ पड़ता है। ऐसे समय में यदि आपस में समाधान नहीं कराया जाय तो दोनों के बीच हुई मारपीट का असर सारे गाँव पर पड़ता है, गाँव में से धर्ममय संस्कृति लुप्त होती है और हिंसा, द्वेष आदि अधर्मतत्त्व बढ़ते जाते हैं। यह स्थिति समाज का एक हितचिन्तक कैसे सह सकता है? वह दोनों के बीच में पड़ कर समझाने का प्रयत्न करेगा ही। नीचे का प्रसंग किसानों और गोपालकों के बीच जमे हुए जंग को एक समाज-सेवक कैसे शान्त करता है, इसकी प्रतीति कराता है।]

",इन्हें मवेशीखाने में बन्द करा दो, मवेशीखाने में बन्द करा दो" इस प्रकार जोर-जोर से चिल्लाते हुए ७-८ किसान जा रहे थे। मैं एक भाई की

दूकान पर बैठा-बैठा बातें कर रहा था। इतने में लगभग २०० गायें भागती दौड़ती निकलीं। इनके पीछे-पीछे वे किसान चिल्ला रहे थे। मैं यह सब सुन कर तुरंत उठा और देखा तो पता लगा कि इन किसानों के पीछे-पीछे गोपालक आ रहे थे; जो गायों को छोड़ देने को कह रहे थे। "अब नहीं आएँगी, छोड़ दो, बापू ! छोड़ दो !" यों कहते हुए वे आजीजी कर रहे थे। मगर किसानों के दिल में खूब ही रोष मालूम होता था। वे तो ···के दरवाजे के पास से गायों को अन्दर बन्द करने का प्रयत्न कर रहे थे, जबकि ये गोपालक आड़े खड़े रहकर गायों को अन्दर जाने नहीं दे रहे थे। वे किसान गायों को अन्दर बन्द करने के लिए भरसक प्रयत्न कर रहे थे। दोनों के बीच काफी गर्मागर्मी, तू-तू मैं-मैं तथा शोर शराबा हो रहा था। इन पशुओं को मवेशीखाने में बन्द करने की तकरार चल रही थी। उस गाँव के अनेक भाई चुपचाप खड़े देख रहे थे, मगर कोई भी इस लड़ाई की आग को ठंडी करने के लिए खड़ा न रहा। अमुक भाई तो इस प्रकार भी बोल उठे—"मरने दो न इन्हें ! ये तो इसी गत के हैं।"

उनकी ये बातें मुझे अच्छी न लगीं। मैं यह सोच रहा था कि "इस समय मेरा क्या धर्म है ?" इतने में तो बड़ा दंगा शुरू हो गया। गोपालकों और किसानों के बीच परस्पर लाठियों और भालों से एक दूसरे पर प्रहार होने लगे। गायें तो एक ठिकाने रहीं। इन्हीं में परस्पर महाभारत मच गया। लाठियाँ और भाले चलाने वाले लगभग २५ व्यक्ति होंगे। एक बुढ़िया माँ का हृदय यह दृश्य देखकर उबल पड़ा। वह दोनों को रोकने लगीं। इसी बीच एक भाई ने उस बुढ़िया माँजी को लाठी मार कर नीचे गिरा दिया। एक भाई ने एक गोपालक का हाथ भाले से छेद दिया। इस प्रकार यह युद्ध बढ़ता चला गया और भयंकर हो गया।

मैं जहाँ बैठा था, वहीं से एकदम दौड़ा और उन्हें समझाने लगा। परन्तु जहाँ दोनों के दिल में शैतान घुसा हुआ हो, वहाँ तुरंत समझे कौन ?

एक ओर से एक गोपालक भाई इन सबको रोक रहे थे। दूसरी ओर से मैं उन्हें विनति कर रहा था—"भाइयो ! धीरज रखो। धीमे रहो। यों लाठियाँ और भाले चलाना बन्द करो। जरा शान्ति से मेरी बात सुनो ! तुम एक

दूसरे के साथ न्यायपूर्ण ढंग से, शान्ति से अपनी बात समझने-समझाने का प्रयत्न करो। ऐसे लड़ना तो जंगली जानवरों-सा व्यवहार समझा जाता है। यह हमें नहीं शोभा देता।"

मेरे कथन का उन लोगों पर असर होता मालूम दिया और ईश्वर की कृपा से दंगा करने वाले सभी धीमे पड़ने लगे तथा कुछ ही मिनटों में वह तूफान शान्त हो गया। मैंने एक दूसरों से अलग-अलग करके उन्हें सबको घर भेजे। ये लोग फिर ऐसा दंगा न कर बैठें, इसकी सावधानी रखी। यद्यपि बाद में एक दूसरे ने शिकायत तो की, मगर अन्त में उस मसले का योग्य समाधान परस्पर हो गया और इस प्रश्न का सुखद परिणाम आया।

: ३४ :

छोटी-सी बात पर से बड़ा उपद्रव !

[गाँवों के पास शारीरिक शक्ति बहुत बड़ी मात्रा में है, लेकिन उसका सही विकास न होने के कारण उसका उपयोग हिंसा, अन्याय और मारपीट करने में होता है। यदि धर्ममय समाजरचना के सिलसिले में अन्याय का अहिंसक प्रतीकार करने में व मध्यस्थता करने में इस शक्ति का उपयोग किया जाय तो (और करना ही पड़ेगा) तो राजसी शक्ति का उपयोग सात्त्विकतावृद्धि में होगा। नहीं तो रजोगुण से प्रेरित वे लोग स्वयं भी शक्ति का अपव्यय करेंगे, उद्दण्डता करेंगे ; अथवा उद्दण्ड लोगों के हाथ के खिलौने बनेंगे। सच्चे समाजसेवक को ऐसे उत्तेजित रजोगुणी लोगों को सत्त्वगुण की ओर मोड़ना है। नीचे की घटना इसकी प्रतीति कराती है।]

"मुझे······साधु ने बहुत पीटा है। मैंने तो उसका कुछ बिगाड़ा नहीं; फिर मुझे उसने क्यों पीटा ?" इस प्रकार एक किसान के लड़के ने अपने घर जाकर रोते-रोते अपने पिता और भाई वगैरह से कहा।

बात यह हुई कि यह किसान का लड़का चौक में खेल रहा था। खेलते-खेलते सहसा उसने थोड़ी-सी धूल उछाली। इसी समय एक साधु उधर से आता

माँगने जा रहे थे। उन पर यह धूल पड़ी। इसलिए उन्होंने इस लड़के को डांटा-फटकारा। इधर दो-तीन बछड़े पानी पीने के लिए निकले। उन्हें इस लड़के ने भड़काए। इस पर साधु ने कठोर शब्द कह कर उसे रोका। पर वह तो और ज्यादा धूल उछालने और सामने बोलने लगा। इसलिए इस साधु को गुस्सा आया और उसने लड़के के गाल पर एक थपड़ जमा दी।

अब को पूछना ही क्या था! लड़का जोर-जोर से रोता-चिल्लाता पैर-पीटता घर आया और उस साधु की शिकायत करने लगा। लड़के के परिवार वाले कुछ भी पूछताछ किये वगैर एकदम घर से बाहर निकले। सबको जोश चढ़ा हुआ था, सब होश भुला बैठे थे। उस लड़के के पिता, भाई और दूसरे सम्बन्धी हाथ में लट्ठ और हंसिये ले कर गालियाँ बकते-बकते उस साधु की कुटिया के पास आकर जोर-जोर से चिल्लाने लगे। बेचारा साधु घबराया। उसने मकान के दरवाजे बंद कर लिये। लड़के के पक्ष के लोग खूब उत्तेजित होकर मनमाना बोलने लगे—"तेरे बाप को मार कर घर में घुस बैठा है। अब निकलता क्यों नहीं है? निकले तो तेरी खबर ले लें। तू कैसा तीस-मारखां है, यह देख लें!"

साधु को बहुत डर लगा कि 'अब तो ये लोग मारे बिना नहीं छोड़ेगे। इसलिए वह मकान के भीतर घुस कर बैठा रहा। ये लोग तो बाजार के बीच बैठे ही रहे और जोर-जोर से चिल्लाते रहे—"बस, आज तो इस बाबा को मार ही डालेंगे, इसे काट डालेंगे।"

इस समय दृश्य बहुत ही विकराल बना हुआ था। एक छोटी-सी बात पर से इतना बड़ा उपद्रव खड़ा हो गया था।

दिनदहाड़े ऐसा तूफान! गांव के एक अग्रगण्य सेवाभावी भाई ऐसी स्थिति देख कर रह न सके। वे तुरन्त भाग कर वहाँ पहुँचे। उनके दिल में यह सब देख कर बड़ा दुःख हो रहा था। उन्होंने उन उत्तेजित किसानों को रोके और कहा—"भाइयो! ऐसा मत करो। शान्त हो जाओ। क्रोध करने से अच्छा परिणाम नहीं आता। उस साधु से हम मिलें और उसे यथोचित कहें। तुम सब अपने घर चलो और इन लट्ठियों और हंसियां को नीचे रख दो।"

परन्तु ऐसी उत्तेजना में माने कौन ? कुछ देर तक तो वे किसान इस हठ को पकड़े बैठे ही रहे कि "उस साधुड़े को बाहर निकालो, तभी हम जायेंगे।" परन्तु इस सेवक के बहुत समझाने पर अन्त में वे सब मान गए और ठंडे पड़े। सब ने घर जा कर अपने-अपने हाथ से लट्ठी और हंसिये नीचे रख दिये। पर एक भाई अभी भी अपने हाथ से लट्ठी नीचे रख ही नहीं रहा था। उस वेचारे साधु ने तो सोचे-समझे विना उतावली कर डाली। अब तो वह भी पछता रहा था।

मुझे ये सब समाचार ब्योरेवार मिले। अतः मैंने इस प्रश्न को हाथ में लिया। इसके अलावा इस गांव के लोगों की श्रद्धा भी शुद्धिप्रयोग और मध्यस्थप्रथा-प्रयोग के प्रति जमी हुई थी। अतः इस दृष्टि से प्रयत्न शुरू किये गए। हम सब मिल कर उस लड़के के अभिभावकों को समझाने लगे। साधु से भी मिले। उसे भी सच्ची हकीकत बताने को कहा। जिस तरह से यह घटना हुई, उसने उसी तरह कही। मन्दिर के पुजारी उस रामानन्दी साधु को अपनी गलती के बदले उलाहना दिया गया। उसने कबूल किया कि "मैंने जो गलती की है, उसके बदले आप मुझे जो न्याय देंगे, उसे मैं स्वीकार करूंगा।" उन किसानों ने भी उसकी कुटिया पर आ कर धावा बोला और चिल्लाए। उसके बदले उलाहना दिया गया।

परन्तु उन किसानों की अब एक ही इच्छा थी। उन्होंने यह शर्त रखी कि "या तो हम इस बाबा को अपने हाथ से मारें या फिर इसे जूतों का हार पहिना कर सारे गाँव में फिराया जाय और मन्दिर पर जा कर सारे गांव से उसके द्वारा माफी मंगवाई जाय, तभी हम इसे छोड़ेंगे।"

हमें उन किसानों की यह बात हद से ज्यादा और अधिक अनुचित लगी। इसलिए हमने उनके सामने न्याय से अधिक भी नहीं और कम भी नहीं, इस प्रकार की बात रखी—"साधु अपनी की हुई गलती का मौखिक इकरार करे, जाहिर में माफी मांगे और भविष्य में ऐसा नहीं करने का विश्वास दिलाए।"

उन किसानों ने अन्त में इस न्याय को स्वीकार किया, परन्तु यह कहा कि "माफी लिखित होनी चाहिए।" हमने कहा—'लिखित करा लेने में हर्ज

नहीं, लेकिन वह कागज गाँव के अग्रणी सेवाभावी भाई के पास रहेगा, तुम्हें नहीं दिया जायगा।'

आखिर सभी लोग इस बात से सहमत हुए। उस साधु से लिखितरूप में माफी मंगवाई। वह अभिलेख गाँव के एक तटस्थ अग्रणी के यहाँ रखा गया।

इस प्रकार सबके मन से अन्याय का देश निकल गया और एक छोटे-से प्रश्न पर से बड़ा उपद्रव होते-होते रुक गया।

अन्त में सभी लोग शान्ति से विदा हुए।

: ३५ :

महाजंग की भूमिका

[किसी भी पुराने या नये वर्ग के अन्याय या मिथ्याभिमान को पोषण देना नहीं और दिलाना भी नहीं; फिर भी झगड़े बढ़ाने नहीं तथा राज्य की दण्डशक्ति का अन्तिम नम्बर है, उसे पहले नम्बर में न आने देनी है। ऐसी परिस्थति में रचनात्मक कार्यकर्ता और काँग्रेस-कार्यकर्ता अपनी-अपनी रीति से स्वाभिमानपूर्वक समझाहट और दीर्घदृष्टि से ऐसी (उच्च मानी जाने वाली) कौम से अपनी गलती का स्वीकार कराने तथा स्नेह से पिछड़ी मानी जाने वाली कौम के साथ मेल कराने की भूमिका बनाएँ तो दो कौमों के बीच संभावित महाजंग होने से रुक सकता है।]

'मारो इस डेढ़ गरासिये[1] को!' यों कहता हुआ एक कौम के बड़े विद्यार्थियों का टोला पिछड़ी जाति की एक शिक्षासंस्था के टुअर पर आए हुए थोड़े-से विद्यार्थियों पर टूट पड़ा। एक विद्यार्थी को सख्त चोट लगी। फिर तो दोनों कौमों के विद्यार्थियों के बीच जम कर महासंग्राम मचने-सा वातावरण बन गया। पिछड़ी जाति की शिक्षासंस्था के दूसरे विद्यार्थी भी तीखे साधन ले कर निकल पड़े। असली परिस्थिति की जाँच करते हुए पता

---

१. राजपूत को गरासिया कहते हैं।

लगा कि गरासिया (राजपूत) कौम का विद्यार्थी विद्यालय में कंकर फैंक रहा था तथा हँसी-मजाक कर रहा था। एक कंकर इस पिछड़ी कौम के बालक को लगा। उसने इस पर हो-हल्ला मचाया। तब दूसरे विद्यार्थी ने कहा—'तू कौन है कहने वाला ? मैं तो गिरासदार का लड़का हूँ !" इस पर उस विद्यार्थी ने जवाब दिया—तू ऐसा है तो, मैं कौन-सा कम हूँ !" बस, इस छोटी-सी बात पर से दोनों कौमों के छात्रालयों के छात्रों में परस्पर महाजंग की भूमिका खड़ी हो गई।

पिछड़ी जाति के छात्रालय के गृहपति उस समय कहीं बाहर गये हुए थे। वे जब आए और सारी हालात जानी तो उन्हें बहुत दुःख हुआ। उन्होंने सोचा—"ये दोनों कौम के विद्यार्थी परस्पर लड़ें, यह तो उचित नहीं है। परन्तु अगर इस बारे में कुछ भी नहीं होगा तो उस कौम के विद्यार्थियों का मिथ्याभिमान बढ़ जायगा। इसलिए कानूनी उपाय से काम ले कर इनका मिथ्याभिमान तोड़ना चाहिये।"

इसी चिन्ता में उन्हें सारी रात नींद नहीं आई। सुबह जब उन्होंने मेरे सामने अपना अभिप्राय रखा तो मैंने उन्हें कहा—"हमें समझाहट और अन्त में कोई चारा न रहने पर शुद्धिप्रयोग का आश्रय लेना चाहिये। परन्तु सरकारी राह से कानूनी उपाय से काम नहीं लेना है और न अन्याय के सामने घुटने टेकने हैं।"

यों बातचीत करके मैं, वे गृहपति और एक कांग्रेसी कार्यकर्ता तीनों उस कौम के छात्रालय में गये। वहाँ जा कर उस कौम के छात्रों से पूछा—बोलो, इसमें दोष किसका है ? तब उन छात्रों ने कहा –"तू एक गरासदार है तो मैं डेढ़ गरासदार हूँ; यों कह कर उस लड़के ने मुझे सताया। इसलिए मुझे और हमें यह रास्ता लेना पड़ा।"

आक्रमण करने वाले छात्रालय के गृहपति भी वहीं खड़े थे। उन्होंने अपना पश्चात्ताप प्रगट करते हुए कहा—"दोष हमारे विद्यार्थियों का है। मैं पश्चात्तापपूर्वक आपसे माफी माँगता हूँ।"

ऐसा कहने के साथ ही उन बालकों के चेहरे उतर गए। पिछड़ी जाति के छात्रों को बुला कर सबको इकट्ठे किए। उन बालकों का गुस्सा भी अब कहाँ टिकने वाला था ?

दो कौम के परस्पर लड़ने वाले विद्यार्थियों ने एक दूसरे को गुड़ खिलाया। परस्पर प्रेम से गले से गले लगाकर मिले। सचमुच वह दृश्य अनोखा था! दोनों छात्रालयों का स्नेह-सम्मेलन होने का वहीं का वहीं निश्चय हो गया। तिथि निश्चित कर ली गई। स्नेह-सम्मेलन बहुत सुन्दर ढंग से हुआ। हम तीनों के हृदय आनन्द से ओतप्रोत हो गए और हम अपने अपने काम में संलग्न हुए।

: ३६ :

पंचायत में पक्षापक्षी मिटी

[ब्रिटिश शासन आने से पहले गाँवों की पंचायतें मजबूत थीं, क्योंकि उनके मूल में जनता और जनसेवक थे। ग्रामपंच के पद पर आसीन मनुष्य अपने सगे पुत्र का भी अन्याय प्रगट करता था, छिपाता न था। इसी कारण 'पंच बोले वहाँ परमेश्वर, की कहावत प्रचलित थी। जहाँ न्याय हो, वहाँ भगवान् का निवास होता है। इसी से ग्राम्य समाज एकरूप, शक्तिशाली और हराभरा रहता था। परन्तु जब से गाँव में सज्जन-पुरुषों, संतों और सतियों की कमी होने लगी, गांवों के प्रति परिव्राजक उदासीन हुए, गाँवों को शहरों की रचना ने और ऊपर की सत्ता ने तितरबितर कर दिया, तब से गाँवों में शैतान का निवास हो गया। ऐसी दुर्दशा में ऊपर से लादी हुई ग्राम-पंचायतों के कारण झगड़े बढ़ने लगे; न्याय की जीत के बदले बहुमत की जीत होती है। इसमें भी अगर सेक्रेटरी नियुक्त करने-निकालने की सत्ता ग्राम्यसमाज के हाथ में न रहे तो पंचायत में आखिरकार टोलाशाही आ धमकती है। और वह पंचायत राज्यसत्ता का खिलौना बन जाती है। इसलिए पंचायतरचना में कुछेक ऐसे तत्त्व डालने की जरूरत है। कौन-से तत्त्वों का प्रवेश होना जरूरी है, यह बात नीचे की छोटी-सी घटना स्पष्ट बता रही है।]

"हमारे गाँव में जो झगड़े चल रहे हैं, उनका निपटारा करवा कर, हमारे गाँव में शान्ति स्थापित हो, हमारी यह कठिनाई दूर हो; इस प्रकार का प्रयत्न करके हमें मदद कीजिए। ऐसी हमारी नम्र प्रार्थना है।"

उपर्युक्त आशय की गाँव के लोगों के हस्ताक्षर वाली एक अर्जी किसान-मंडल पर आई।

इस गाँव में पिछले लगभग दो सालों से पृथक्-पृथक् अनेक प्रश्न खड़े हुए और उनके निपटारे न होने की वजह से गाँव में क्लेश बढ़ता जा रहा था। इसके कारण गाँव में तीन-चार पार्टियाँ हो गई थीं। उनमें मुख्यतया दो पार्टियाँ थीं। यदि इसका समाधान जल्दी से जल्दी नहीं कराया जायगा तो उसका परिणाम बुरा आएगा, ऐसी बातें सुनाई देती थीं। इसके समाधान के लिए तो आमतौर पर कई भाइयों ने कोशिशें कीं, परन्तु यह झगड़ा झटपट निपटाया जा सके, ऐसी स्थिति नहीं रही। इसी बीच 'ग्रामपंचायत' आई। यह क्लेश की आग में घी डालने जैसा हुआ। अब तो पूछना ही क्या था! पंचायत में व्यवस्थितरूप से दो पक्ष हो गए। कलेक्टर के पास दोनों पक्षों की ओर से अर्जियाँ पहुँचने लगीं।

मानो थोड़ी-सी और कमी थी, उसकी पूर्ति के लिए सेक्रेटरी ने अनुचित प्रस्ताव लिखने का हिस्सा अदा किया। पहले का जो उचित प्रस्ताव था, उसे बदल किया।

मंडल के पास उपर्युक्त अर्जी आई, इसलिए मैं.........गाँव में बार-बार जा कर लोगों को ग्रामहित की बातें समझाने लगा। सबसे पहले घरघर जा कर लोगों से व्यक्तिगत सम्पर्क किया। सारे प्रश्न को गहराई से जांचने पर पता लगा कि गाँव में मुख्य दो पक्ष हैं। गाँव के दूसरे लोग उनको बार-बार बहका-भड़का कर आपस में लड़ाते-भिड़ाते थे। दोनों पक्षों में खींचा-तानी बढ़ी हुई थीं। झगड़े में छोटी-छोटी बातें तो बहुत-सी थीं। परन्तु मुख्य बात थी—पंचायत के सेक्रेटरी को हटाना या न हटाना। झगड़े में सरकारी दांवपेच भी चलते थे, पंचायत के अमुक सदस्य गुस्से में आकर बोले-"ऐसा सेक्रेटरी नहीं चाहिए।" सेक्रेटरी के पक्ष में भी अमुक सदस्य थे। वातावरण इतना दूषित हो गया कि अगर उसका शीघ्र निराकरण न हो तो गाँव का

विनाश होना संभव था। अब क्या किया जाय ? उसके निराकरण में काफी समय लगाना पड़ेगा; ऐसी परिस्थिति थी।

प्रायोगिक संघ और किसानमंडल के सदस्य करीब ६ दफे स्वयं गाँव में हो आए थे। पत्र द्वारा परोक्ष सम्पर्क तो था ही। यद्यपि कलेक्टर को अर्जी लिखने के बाद उनका जवाब आने से पहले ही एक पक्ष के भाइयों ने उतावल करके सेक्रेटरी को निकालने का प्रस्ताव पास कर दिया। इससे दूसरे पक्ष के भाइयों का दिल दुःखित हुआ। ऐसी स्थिति में लगभग दो महीने तक बार-बार गाँव में जाना हुआ। लोगों से फिर व्यक्तिगत और पक्षगत मिला और उन्हें समझाया। एक-दूसरे को मधुर उपालम्भ भी दिया।

अन्त में, सभी अग्रगण्यों के एक तटस्थ स्थान पर मिल सकने की भूमिका बनी! सभी एकमत से निर्णय कर सकें, ऐसी परिस्थिति पैदा हुई। परन्तु ग्रामपंचायत सरकार का अंग होने से कलेक्टर और जिला लोकल बोर्ड अनुकूल न हो वहाँ तक कानूनी दृष्टि से कुछ भी नहीं हो सकता था। कानून जनता के लिए है, जनता कानून के लिए नहीं, यह बात यहाँ ओझल हो गयी थी।

सद्भाग्य से कलेक्टर का जवाब आया—"सेक्रेटरी को रखने या निकालने के सम्बन्ध में यथोचित करने का कुल अधिकार पंचायत को है।' इससे काम आसान हो गया। सर्वानुमति से निर्णय लिया गया कि तीन महीने के लिए सेक्रेटरी को निकाल कर उसके स्थान पर कामचलाऊ सेक्रेटरी रखा जाय। तीन महीने बाद पंचायत की मीटिंग मिले, तब मंडल के प्रतिनिधि की उपस्थिति फिर निर्णय किया जाय; ऐसा प्रस्ताव पास किया गया। क्योंकि सेक्रेटरी का दोष था ही।

इस प्रश्न का इस प्रकार सुखद समाधान हो जाने के बाद निश्चय किया गया कि दूसरे छोटे प्रश्नों को सब भूल जाएँ। चूँकि अब दूसरे प्रश्न भी सर्वानुमति से निपटाने की भूमिका बन गई थी; अतः सब हलके हो गए। सबके मन में संतोष हुआ। एक पक्ष के भाइयों ने दूसरे पक्ष के भाइयों को अपने घर न्यौता दिया। सब गए और परस्पर शरबत पीया। अब हलके मन से ठंडे दिल से बहुत-सी बातें की। सबने दिल खोले। एक दूसरे के नज़दीक आए। और अब यह निश्चित हुआ कि गाँव का काम नये सिरे से मिलजुल कर प्रेम से चलाया जाय।' उसके बाद सब लोग आनंद से विदा हुए।

यह भी ज्ञात हुआ कि इस समाधान के कुछ दिनों वाद गाँव के सभी नागरिक मिले और पंचायत में वैठ कर ग्रामहित को सम्वन्ध में अनेक प्रस्ताव पास किए।

: ३७ :

गाँव में तू-तू-मैं-मैं का शमन

[गाँवों में जब छोटे-छोटे झगड़ों के कारण कुसंप वढ़ता है, तो वहाँ शान्ति नहीं रहती। और गाँव में अशान्ति रहे तो गाँव विश्वशान्ति का रास्ता कैसे वता सकते हैं? यदि गाँवों में साधुसाध्वियों का मार्ग-दर्शन मिले और सच्चे जनसेवकों का सहयोग मिले तो वे झगड़े रह ही नहीं सकते। पर यह तभी हो सकता है, जव गाँव स्वयं कुछ जागना चाहे। ऐसे गाँवों में अगर प्रयत्न हों तो रोड़े अटकाने वाले विघ्नसंतोषी लोग भी धीरे-धीरे समझ जाते हैं और वे ग्राम के हित में ही सोचने लगते हैं। एक छोटे-से गाँव में वढ़ी हुई फूट का कैसे अन्त? और संगठन एवं प्रेम से गाँव में सवका सहयोग और प्रेम कैसे वढ़ा? इसे नीचे की घटना स्वयं वता रही है—]

"......गाँव में काफी अर्से से वहुत ही ज्यादा फूट है। अनेक परिवार एक दूसरे के साथ वोलते नहीं और भाई-भाई परस्पर झगड़ते हैं। इसका योग्य समाधान करने के लिए......गाँव को किसानमण्डल का सहकार मिलना चाहिए।"

मैं चौमासे में जिनके यहाँ एक महीने रहा था, उन्होंने मुझसे यह वात कही। मैंने......गाँव में जाने की स्वीकृति दी और अपनी दृष्टि से यथोचित करना मंजूर किया। मेरे साथ इस गाँव के ४ भाई......गाँव में आए। हम गाँव की परिस्थिति से वाकिफ हुए। हमें यह जानकारी मिली कि अमुक

परिवार ही समाधान होने देने में उलटा पाठ पढ़ाते हैं। उन सबसे पहले हम व्यक्तिगत रूप से मिल लिए। उन्हें उचित ढंग से समझाया। सबको हमारी बात गले उतरी। इसलिए गाँव की सभा बुलाने का तय हुआ। सभा अच्छे ढंग से हुई। उपस्थिति अच्छी थी। सभा में, प्रसंगोपात्त गाँव में फूट की स्थिति और ग्राम का हित किस में है, इस बारे में कहा गया। सभा में आने वाले भाई भी अपने ढंग से परस्पर स्पष्टीकरण करने लगे। घड़ी-भर तो वातावरण गर्मागर्म हो गया था। जिन भाइयों ने बहुत-सी गलतियाँ की थीं, उन पर बार-बार वाक्य-प्रहार होता था। हमने प्रत्येक व्यक्ति को योग्य रीति से समझा कर वातावरण शान्त किया।

अन्त में, एक पक्ष के मुख्य भाई की तथा दूसरे पक्ष के भी मुख्य भाई की समझ में आ गया "यह झगड़ा केवल तू-तू मैं-मैं का यानी अहं का है और इसमें कुछ खास तथ्य नहीं है। अगर इसे मिटाना हो तो परस्पर एक दूसरे को नम्र बनना चाहिये।" इस पर एक भाई खड़े हो कर बोले—"मैंने आज तक आपके अनेक घोड़ों की जीमें काट डाली है। पर आयंदा मैं ऐसा नहीं करूँगा। मुझे माफ करें। मैं आप सबसे माफी माँगता हूँ।"

दूसरी ओर से भी कहा गया—"हम भी अपनी भूलों के लिए आपसे माफी माँगते हैं।" यों दोनों ओर से हलकापन और शान्ति आई। इस प्रश्न में खास तथ्य नहीं था। सिर्फ ऐसी ही बेसिरपैर की बातें थीं कि 'इसने यों किया और उसने यों किया।'

अब दोनों पक्ष भलीभाँति हलके हुए। सबको आनन्द हुआ। समाधान के लिए सभी मन्दिर में इकट्ठे हुए। वहाँ से चलते समय सभी ने एक दूसरे को अपने यहाँ आने का निमंत्रण दिया। सब आए। हम भी वहीं उपस्थित थे। सबने एक दूसरे का भलीभाँति स्वागत किया। परस्पर गुड़ बाँट कर सबने मुँह मीठा किया। गाँव में मधुरता का वातावरण पैदा हुआ। इस प्रकार सारा गाँव प्रेममय बन गया।

: ३८ :

किसान-गोपालकों का आपस में समाधान

[रबारी, भरवाड़ आदि पशुपालक जाति के लोग जब से गोपालक के बदले गो-मालिक बने, तब से निहितस्वार्थी जमींदारों के प्रायः हत्थे बन गए। ब्रिटिश शासनकाल से ही किसानों और गोपालकों के परस्पर सम्बन्ध खट्टे हो गए थे। ऐसी स्थिति में स्वराज्य आने के बाद भी पहले के पुराने रीतिरिवाज गोपलकों में रहने से वे उन्हें संकटापन्न स्थिति में डालने वाले हुए। वैसे किसान भी पुराने अन्यायों और अदालतों का बदला लेने के लिए तैयार हो जाता है। ज़मीन के लोभ के कारण तथा जनसंख्या बढ़ने के कारण जमीन पर दबाब बढ़ने से जैसे गोचरभूमि कम होती जा रही है; वैसे गोपालन भी कमजोर होने से गायों की नस्ल खराब होती जा रही है। ऐसे समय में किसानों और गोपालकों में परस्पर झगड़े पैदा होते हैं। यदि उस समय वे कोर्ट का या हिंसा का आश्रय लें तो दोनों की बर्बादी होती है; परन्तु उसका स्थायी समाधान मध्यस्थ-(पंच) प्रथा द्वारा मंडल द्वारा हो तो कितना सुन्दर परिणाम आता है? इसकी प्रतीति नीचे की घटना करा देती है—]

"अरे! तेरे बाप की बाड़ी थी कि इसमें बकरियों को चरा कर नुकसान पहुँचाया?" यों एक किसान तुच्छता से एक गोपालक को डांटते हुए गालियों की बोछार बरसाने लगा।

बात यों हुई कि इस गोपालक ने अपनी भेड़-बकरियाँ इस किसान के खेत के किनारे-किनारे चराईं, इसलिए उस दिन कोई विशेष नुकसान नहीं हुआ था। लेकिन किसान ने सोचा—"पहले से ही सावधानी रख कर डांट-डपट कर दें तो बाद में नुकसान करने से यह डरता रहेगा।" पर गोपालक भी गाली कैसे सह लेता। उसका भी दिमाग गर्म हो गया। यदि उस समय गोपालक ने सहनशीलता रखी होती तो बात वहीं की वहीं समाप्त हो जाती। परन्तु गोपालक ने भी गालियों के खिलाफ गालियाँ बकनी शुरू कीं। परन्तु घी डालने से आग कभी शान्त हुई है? कदापि नहीं। किसान का गुस्सा बढ़ गया।

वह बोला "अरे ! अपने दोष और अपराध का स्वीकार करने के वदले उलटा सामने बोल रहा है ?" किसान का घर नजदीक ही था। वह घर में से लाठी उठा लाया और 'लेता जा' कह कर गोपालक पर जमा दी। गोपालक ने भी अपने पास के लट्ठ से उसे झेल कर किसान पर लट्ठ जमा दिया। किसान तुरंत ही गश खा कर नीचे गिर पड़ा। वह खड़ा हो कर ज्यों ही गोपालक को मारने गया, त्यों ही एक गोपालक जो दूर से यह देख रहा था, उसकी सहायता के लिए आ पहुंचा। मदद के लिए आएं हुए गोपालक पर उस किसान ने लाठी तो उठाई, लेकिन उसने अपने लट्ठ से उसे झेल ली। इतने में तो तीसरा गोपालक भी आ पहुँचा। और फिर तो वे तीनों ही उस किसान पर टूट पड़े। किसान पर लट्ठ मार-मार कर वे भाग गये। परन्तु वहाँ काफी शोरशराबा मच गया। किसान वाल-वाल वच गया। इस समय तो सभी लोग विखर गए। किसान को कुछ लोग घर ले गए और उसका इलाज करने लगे।

उसके वाद अदालत में दोनों पक्षों ने एक दूसरे के विरुद्ध रिपोर्ट लिखाई। वैर- विरोध वढ़ने लगे। एक दूसरे के विरोध में दो वड़े पक्ष हो गए। दोनों पक्षों की कोमल भावनाओं को उभार कर भिड़ाने वाले तत्त्व भी सक्रिय हो गए। वकीलों को भी अच्छा आहार मिल गया। अव वाकी क्या रहता ? रिश्वतखोर लोग भी कुछ न कुछ पैसे हथियाने के लिए किसान के यहाँ चक्कर लगाने लगे।

मैंने जव यह वात सुनी तो मुझे वड़ा दुःख हुआ। मेरी इच्छा दोनों के आपसी समाधान कराने की थी। इसलिए दोनों पक्षों को समझाने के लिए दोनों मंडलों के कार्यकर्त्ता मिले। दोनों पक्षों को समझाने के सभी उपाय अजमाए गए। गोपालक तो मध्यस्थों द्वारा निर्णय की वात स्वीकार करते थे; पर किसान अभी तक आपस में समाधान के लिए तैयार न थे। मैंने उन्हें समझाया कि "अगर आपस में समाधान नहीं किया जायगा तो कोर्ट में एक दूसरे की भलीभांति वर्वादी होगी, और दोनों पक्षों में दुश्मनी वढ़ेगी। इसलिए तुम्हारे एक छोटे भाई के रूप में मेरा तुमसे नम्र निवेदन है कि तुम मध्यस्थों द्वारा निर्णय को वात मंजूर करके आपस में समाधान कर लो।"

आखिरकार वहुत समझाने पर किसानों ने मध्यस्थ निर्णय की वात स्वी-

कारी। अतः मध्यस्थपद्धति से इसका निपटारा कराने का तय हुआ। मध्यस्थ-पद्धति में यदि नए मूल्य न अपनाए जाँय तो सच्चा न्याय संभव नहीं होता। इसलिए दोनों पक्ष के दो-दो मध्यस्थ नियुक्त किये गए। सरपंच के रूप में प्रायोगिक संघ के सदस्य होने के नाते मेरा नाम निश्चित हुआ। यद्यपि दोनों (किसान और गोपालक) मंडलों के कार्यकर्त्ताओं को इस प्रश्न के बारे में फैसला देते समय उपस्थिति रहने की छूट दी गई। अन्त में, पंचों ने मिल कर इस प्रकार का फैसले का मसविदा तैयार किया—

"हम पैसे का मूल्य इतना महत्त्वपूर्ण नहीं मानते, तथापि व्यवहार में इसका कुछ बुनियादी मूल्य स्वीकार करना पड़ता है, इसलिए व्यवहार में बुनियाद के तौर पर इसे लेते हैं। गोपालकों की गलती किसानों के खेत में अपने पशु घुसाकर चराने की पहले से ही हुई थी। इसलिए अगर गोपालक ने किसान का आवेश में आकर कहा गया बोल सह लिया होता तो वह गलती साफ हो जाती और किसान को पछतावा होता। परन्तु वह ऐसा न करके उलटे किसान के विरुद्ध प्रहार करने को तैयार हो गया; इसलिए गोपालक की दोहरी भूल मानी जायगी। दूसरे, गोपालकों ने भी गोपालक को बिना सोचे-समझे अविवेकपूर्ण मदद की, झगड़ा मिटाने का अपना कर्त्तव्य अदा नहीं किया, यह भी एक भूल ही थी। इसलिए गोपालकपक्ष किसान को ८१) रुपये तुरंत दे दे। किसान को भी गाली न देकर गोपालक की गलती के लिए नैतिक आश्रय लेकर उससे गलती स्वीकार करानी चाहिए थी। पर वैसा न किया। इसलिए किसान की इस गलती के बदले वह तीस रुपये सार्वजनिक फंड में दे।"

इस प्रकार का फैसला सुनते ही दोनों पक्षों के दिल में शान्ति हुई। किसी प्रकार के विशेष खर्च के विना ही सर्वानुमत से यह फैसला हुआ। दोनों पक्षों की ओर से अपनी कमोवेश गलतियों का इकरार हुआ। गोपालकों ने किसान से माफी माँगते हुए कहा —"दोष हमारा था, फिर भी हम सामना करने को तैयार हुए, यह ठीक नहीं था।" गोपालकपक्ष ने ८१) रु० किसान को रिपोर्ट के खर्च के बदले अपनी प्रथम भूल के नाते दे दिये। किसान ने भी माफी माँगते हुए कहा—"मेरा तुमसे न्याय माँगने का अधिकार था, उसके बदले मुझे तुम्हें गाली नहीं देनी चाहिये थी। इसलिए उसके लिए मैं क्षमा

चाहता हूँ।" किसान ने तीस रुपये सार्वजनिक काम में खर्च करने मंजूर किए। दोनों पक्षों के लोग एक-दूसरे से गले से गला लगाकर मिले, परस्पर राम-राम किया और हिले-मिले। जो रिपोर्ट लिखाई गई थी, उसे रद्द करवा दी। मध्यस्थों, कार्यकर्ताओं, सरपंच और अन्य लोगों की उपस्थिति में वे सव हलके हो गए। वातावरण वड़ा सुखद और सुवासित हो उठा। एक व्यक्ति वोल उठा—" भाई का इस बारे में सिर्फ एक महीने का ही अध्ययन है। फिर भी फैसला बहुत तटस्थरूप से न्यायोचित दिया है। मुझे तो यह जान कर वहुत ही आनन्द हुआ है।"

संक्षेप में, इस प्रश्न में खर्च वचा, सस्ता व शुद्ध न्याय मिला और वह भी वहुत शीघ्र ही। मध्यस्थों द्वारा दिया गया घण्टों का समयदान सार्थक हुआ। सवसे वड़ा संतोष यह हुआ कि वैर वढ़ता रुक गया।

: ३९ :

टूटे हुए दिल जुड़ गए!

[व्यक्ति से परिवार और समाज वनता है, पति-पत्नी दोनों के जुड़ने से। वे दोनों जितने स्नेही, संयमी, सहिष्णु और कर्तव्यपरायण होंगे, उतने अंश में उनका प्रभाव उनके परिवार पर और धीरे-धीरे सारे समाज पर सुन्दर होता है। इसीलिए गृहस्था श्रमसमो धर्माः न भूतो न भविष्यति' कहा गया है। पति-पत्नी का सुमेल हो, तभी गृहस्थाश्रम स्वर्गतुल्य वन सकता है; जवकि दोनों का कुसंग कलह और वैमनस्य सारे परिवार को परेशानी में डाल देता है और साक्षात् नरक का दृश्य उपस्थित कर देता है। अन्त में, वह विष चक्र समाज में अनर्थ मचाता है। ऐसे समय में यदि धर्ममय समाज रचना के सच्चे सेवक दोनों के दिल जोड़ने का पुण्यकार्य करें तो वे समाज को इस अनर्थ से वचा सकते हैं और उस परिवार को भी सुखी वना सकते हैं। एक दम्पती के मनमुटाव को सुमेल में बदलने की यह घटना अनेक प्रेरणाएँ देने वाली हैं—]

"अगर उसे आना हो तो आए; नहीं तो उसे जैसे अच्छा लगे, करे। उसे भी आटे-दाल का भाव मालूम पड़ जायगा कि गृहस्थी चलानी कितनी कठिन है! अब तो मैं सभी कदम उठाऊँगा। फिर आप मुझे यों मत कहना कि तुमने पहले क्यों नहीं कहा!"

मैं और किसानमण्डल के अग्रणी दोनों⋯तहसील के दौरे पर गए तो वहाँ के किसानमण्डल के शाखाकार्यालय के एक कार्यकर्ता भाई के घर पर आ कर एक भाई ने अपनी पत्नी के सम्बन्ध में उपर्युक्त उद्‌गार निकाले।

हम समझ नहीं पाए कि यह क्या मामला है? हम सोच ही रहे थे कि किसानमण्डल के शाखाकायालय के उन कार्यकर्ता ने हमें बताया कि देखिये, मैं काफी समय से इस परिवार में सुमेल लाने का प्रयास कर रहा हूँ। मगर अभी तक सफलता नहीं मिली। आप भी यहाँ अनायास ही आ पहुँचे हैं तो इस मामले को सुलझाने में सहायक बनें। इससे आपको बहुत ही पुण्य-लाभ होगा।

इसके बाद हम⋯भाई (शिकायत करने वाले) से पूछने लगे तो उन्होंने सीधे मुँह से जवाब न दिया। हमने इन कार्यकर्ता भाई से इस मामले को विस्तार से समझाने को कहा। तब उन्होंने बताया कि "इस बहन का नाम ⋯बहन है। इसकी उम्र लगभग २३-२४ साल की है। फाइनल (मैट्रिक) पास है। इसके पति की उम्र करीब ३० साल की होगी। ये स्वयं शिक्षक हैं। बात यों हुई कि यह बहन जब से अपने ससुराल गई, तब से ही झगड़े की शुरूआत हो चुकी। चाहे जो कारण हो, इस भाई का दिमाग जरा तेज और उतना ही अस्वस्थ भी है। साधारणतया स्वामित्व के अभिमान के कारण भी पुरुष का दिमाग प्रायः गर्म होता है। परन्तु यहाँ यह बहन भी ऐसी ही निकली। दोनों में एक दूसरे से कोई कम नहीं। भाई डांट-डपट किए बिना नहीं रहते और यह बहन गुस्से में आकर बड़बड़ाने से बाज नहीं आती। अन्त-में, इस बहन ने ससुराल-निवास छोड़कर अपने मायके में निवास कर लिया। बात की बात में पाँच साल बीत गये। इसमें इस बहन की माता का भी दोष है कि जिसने अपनी बेटी को प्रश्रय दिया। अन्ततः ये भाई भी इससे ऊब गए और तलाक देने को उद्यत हो गए। बहन भी तलाक के लिए तैयार हो

गई। दूसरे के साथ शादी करने की योजना बना ली। सामान्यतया कोई भी भारतीय महिला पुनर्विवाह करना पसन्द नहीं करती। इसकी माता को भी यह कैसे पसन्द होता? परन्तु बेटी की उम्र आज २५ साल की है; सारी जिन्दगी कैसे निकालेगी? आत्म-हत्या न करनी हो और जिन्दगी गृहस्थी में ही बितानी हो तो पुनर्विवाह किये सिवाय और दूसरा क्या चारा था? इस प्रकार इन दोनों की गुत्थी उलझी हुई है।"

यह प्रश्न एक बहन का है, यह सोच कर हमें उस बहन से रूबरू मिलने की इच्छा हुई। इस कार्यकर्ता भाई के यहाँ बहन को बुलाया गया। बहन अपनी माँ के साथ आई। बहन के बारे में हमने सारी बात जान लेने के बाद दुःखपूर्वक उद्गार निकाले—"बहन! तुम दोनों पतिपत्नी शिक्षित हो, फिर आपस में झगड़ा क्यों करते हो?"

बीच में ही बहन की मां बोलने लगी—"........के कपड़े न लाएँ तथा इसके गहने न लाएँ, तब तक मैं इसे सुसराल नहीं भेजूंगी। मुझे तो किसी भाव भी यह दामाद नहीं चाहिए। वह इसे तलाक दे दे। बस, छुट्टी हुई।" फिर वह अपने दामाद की निन्दा 'यह तो ऐसा है, यह तो वैसा है' इस प्रकार से करने लगी।

हमने उससे पूछा—"मांजी! फिर क्या करेंगी आप?"

मांजी बोली—"दूसरी जगह इसका नाता करना तय कर लिया है।" हमें यह बात अच्छी न लगी। हमें लगा कि वास्तव में...... बहन की माताजी ही अपनी लड़की को नुकसान पहुँचा रही है।

इसके बाद हमने उस बहन से पूछा—"बहन! तुम्हारी क्या इच्छा है?" उसने कहा—"मैं सुसराल जाने को तैयार हूँ। मैं सब कुछ सहन करूंगी। मुझे इन (पति) के साथ जाने में कोई हर्ज नहीं। पर ये मुझे दुःख न दें। आप सब मेरे मां-बाप के नाते इस बात की सावधानी रखना, इस पर से हमें लगा कि बहन सचमुच चतुर है। यह अपना हित पति के साथ रहने में ही समझती है।

हमें अब इस प्रश्न की गहराई में उतरने पर पता लगा कि इसमें मुख्य व्यक्ति जिसके हाथ में चाबी है; इस बहन की माताजी हैं। इसलिए हमने

वहन की माताजी को वहुत समझाया, अपनी पुत्री के हित की वात समझाई। अतः वे जरा ठंडी पड़ीं। अव उन्होंने कहा—"मैं तो तुम कहो वैसे करने को तैयार हूँ। मेरी वेटी जिसमें सुखी हो, वैसा करने को मैं राज़ी हूं।"

इसके वाद हमने विचार किया—"तलाक दे कर पुर्नविवाह करना स्त्री के लिए आसान नहीं होता। जवकि यह प्रश्न आसानी से हल कैसे हो? इसकी जांचपड़ताल और वातचीत करने के वाद हमें जानकारी मिली कि "इस वहन की वड़ी वहन वीमार रहती है। इसलिए यह वहन अपनी वड़ी वहन के यहाँ घर का सव कामकाज करती है। इस कारण इसके वहनोई की इस वारे में नीयत खराव हो गई कि·······वहन अपने ससुराल चली जायेगी तो मेरे घर के कामकाज का क्या होगा! इस वुरी निष्ठा से इस वहन के वहनोई इसे ससुराल नहीं जाने देने की नीयत से एक दूसरे (पति पत्नी) को लड़ाते-भिड़ाते रहते। यानी ·····वहन के वड़े वहनोई अपने तुच्छ स्वार्थ के लिए इस कुसंप (कलह) को घटाने में मदद न करके उलटे, इसे वढ़ाने में मदद करते मालुम हुए। कवि ने ठीक ही कहा है—"भवन वनावत दिन लगे, तोड़त लगे न देर।"

जव हमें इस रहस्य का पता लगा तो हम वहन और उसकी मां से फिर मिले और उन्हें समझाए। वहन के पति (भाई) को भी उस मौके पर वुलाया। उनको विस्तार से समझाया कि "तलाक के वाद क्या नतीजे आ सकते हैं? और अपने ही घर में दोनों के परस्पर मिलजुल कर प्रेम से रहने से क्या फायदा होगा? तलाक के वाद क्या-क्या अनर्थ हो सकते हैं? इत्यादि। हमारी हितकर वात सवके गले उतर गई। अन्त में हमने······· भाई (वहन के पति) को उलहना भी दिया। उन्हें यह हिदायत दी कि "आयंदा कभी इस वहन को आप हैरान न करना।"

वाई के पति ने भी हमें विश्वास दिलाया कि 'अव यदि किसी वात के वारे में मैं इसे कुछ भी सजा करूं या इस पर क्रोध करूं, डांटूं-फटकारूं तो आप मुझे जो भी उचित समझें सजा दे सकते हैं। मैं अपने गृहसंसार को सुखरूप से चलाने के लिए शान्तिपूर्वक प्रयत्न करूंगा। अव तक मेरी जो-जो गलती हुई हों, उनके लिए मुझे माफ करें। तथा·······के जो कुछ कपड़े

मेरे वड़े भाई के यहाँ पड़े हैं, मैं उन्हें तुरन्त ला कर इसे दे दूंगा। जो गहना है, वह भी ज्यों का त्यों वहाँ पड़ा है, उसे भी मैं कुछ अर्से वाद अपने वड़े भाई के यहाँ से ले आऊँगा, क्योंकि अभी वे मुझे देंगे नहीं।"

ऐसी नम्र बात.......भाई के मुँह से सुन कर किसे संतोष नहीं होता ? हमें भी यह आशा हुई कि अव इन दोनों का गृहस्थाश्रम अच्छी तरह चल सकेगा।

इसलिए दूसरे दिन हमने कार्यकर्ता भाई के यहाँ.......वहन, उसके पाते (...भाई) व उसकी माता इन सवको इकट्ठे किए। हमने फिर एक दूसरे को यथोचित कहा-सुनी की। सवने अपनी-अपनी गलती स्वीकार की। पति-पत्नी दोनों ने परस्पर एक दूसरे से माफी मांगी और दोनों ने विश्वास दिलाते हुए कहा—"आज से हम दोनों एक दूसरे के प्रति उदार रह कर सुख से गृहस्थी चलाने का निश्चय करते हैं। प्रभु हमें ऐसी शक्ति दे, जिससे हमारी गृहस्थी सुखपूर्वक चले।"

इसके वाद.......वहन की माताजी ने भी विश्वास दिलाया कि "मैं अव कभी इन दोनों के काम में टांग नहीं अड़ाऊँगी। मैं तो यही चाहती हूँ कि मेरी वेटी सुखी रहे। और दामाद (.......भाई) का भी दिल मैंने अव तक दुखाया है, इसके लिए उससे भी माफी मांगती हूँ।"

इस प्रकार वातावरण वहुत ही सुन्दर वन गया। 'घी के वर्तन में घी पड़ गया।' पति-पत्नी दोनों के चेहरे पर उल्लास की रेखा नजर आने लगी।

दूसरे दिन मैं.......भाई के साथ उनके वड़े भाई के यहाँ.......गाँव जा आया। उनके वड़े भाई दोनों के सुमेल की वात जान कर अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने.......वहन के जो कपड़े थे, वे.......भाई को सौंप दिये। ....वहन के जो गहने थे, उसके वारे में उन्होंने कहा—".......दोनों का अपना मकान वन जाय तो मैं इन गहनों को देने को तैयार हूँ। हम तो यही चाहते हैं कि ये दोनों पति-पत्नी सुख से रहें। मैं यथाशक्ति अपना सहकार देने को तैयार हूँ। ....भाई की भाभी भी सरल प्रकृति की मालूम हुई। उन्होंने भी अपनी सद्भावना वताई।

इससे मुझे बहुत आनन्द हुआ। मेरे मन पर सद्भाव अठखेलियाँ कर रहा था। दूसरे दिन हम सब प्रेम से विदा हुए।..........भाई और..........बहन दोनों जहाँ उन (भाई) की नौकरी थी, वहाँ चले गए।

कुछ दिनों बाद दोनों का पत्र आया। जिसमें बहन ने लिखा—

"हम दोनों कुशल हैं, शान्ति से रहते हैं।.......मेरी चिन्ता मत करना।.........हम प्रसन्न और आनन्दित हैं।.......हमारे उजड़ते हुए गृहस्थ संस्कार को फिर से बसाने में आपने जो सहयोग दिया है उसके लिए हम आपके ऋणी हैं।.......हमारे लायक कामकाज लिखना। पत्र द्वारा स्नेह-शृंखला चालू रखना।.......।"

.......बहन के पति ने लिखा—"अब हमारी चिन्ता आपको बिलकुल नहीं करनी पड़ेगी.......हमारा संसार सुन्दर तरीके से चल रहा है। आप इस ओर आने के लिए अवश्य समय निकालना।.......आप यहाँ आएँगे तो हमारे रहन-सहन और रंग-ढंग से आपको खूब संतोष होगा।

हमारा संसार सुधार कर आपने पुनः लाइन पर लाने में.......हमारे अन्तर की आशीषें आपने प्राप्त की हैं।.......

"प्रभु आपकी कार्यक्षमता अनेक गुनी बढ़ाएँ और ऐसे शुभकार्यों में आपको सदा सफलता मिलती रहे।......."

इस प्रकार टूटे हुए दिल फिर से जुड़ गए, उसका अपार हर्ष किसे नहीं होता !

: ४० :

मानवता का कार्य

[धर्ममय समाजरचना की जिसे धुन लगी हो, उसे हर एक जगह हर एक मनुष्य में काम मिल सकता है। एक समय था, जब मानवमात्र में भगवान् को देखने की दृष्टि प्राप्त करने की जरूरत होती थी, आज मानवमात्र को अपने-अपने योग्य समाजरचना के भागवतकार्य में लगा

देने की जरूरत है। पर यह कैसे हो ? मनुष्य अपने शरीर का मानव-सेवा या कुटुम्बसेवा के साधन के रूप में उचित उपयोग कर सके; ऐसी स्थिति पैदा करना भी धर्ममय समाज रचना का अंग है। फिर तो यही मेरा कार्य है, दूसरा नहीं; ऐसी एकांगी वृत्ति न पैदा हो; तथा किसी गौण कार्य के मोह में पड़ कर मुख्य कार्य का सिलसिला न भूला जाय; यह भी देखना है। वर्तमान औषधालयों में दवा के साथ दया है, मानव जाति के प्रति हमदर्दी है। वहाँ स्वस्थ होने वाला मानव दूसरों के लिए क्या ऐसी ही दया और सहानुभूति नहीं बता सकता ? क्रिश्चियन मिश्नरी भी ऐसा सेवा कार्य जरूर करते हैं, लेकिन करते हैं सिर्फ सम्प्रदाय की संख्या बढ़ाने के लिए। परन्तु जब भारत के सर्वधर्मप्रेमी सेवक ऐसा ही काम सिर्फ मानवता बढ़ाने के लिए करेंगे; तभी धर्ममय समाजरचना का कार्य पूरा हुआ समझना। नीचे की घटना में ५ पात्र हैं—(१) ग्राम-कार्यकर्त्ता (२) नगरकार्यकर्त्ता (३) बीमार के साथ जाने वाला दूसरा भाई (४) दवाखाने के परिचारक-परिचारिकाएँ (५) दुःखी रोगी मानव। क्या ये धर्ममय समाजरचना की ईमारत के लिए ईंट और चूने के रूप में नहीं हैं ?]

"भाई ! यहाँ क्यों सोते हो ? बापू !" ऐसे मधुर शब्द कान में पड़ते ही सोया हुआ भाई बोल उठा—"बापू ! इस महानगर के सिविल हॉस्पिटल में इलाज कराने के लिए दूर-सुदूर के एक छोटे कस्बे से आया था। पर इस विशालकाय हॉस्पिटल में मेरे जैसे ग्रामीण को कौन पूछे ? खैर, यह तो होना हुआ सो हुआ। परन्तु किराये के लिए जो रुपये लाया था, वे भी इधर-उधर के खर्च में लग गए। एक रुपया बचा था, उसे भी कल एक व्यक्ति मेरी सेवा करने आया था, उसको यह कह कर दिया था, कि "एक कप चाय ले आ और बाकी की रेजगारी ले आ।" परन्तु वह गया सो गया। लौट कर नहीं आया। अब मुझे भूख और प्यास दोनों लगी हैं। या तो रोटी और पानी ला दो या मुझे दो आने दे दो तो अच्छा हो। "यों कहते-कहते उसकी वाणी रुक गई। मुझे मालूम हुआ कि रोटी मांगते हुए वह शरमा गया !

इस रोगी भाई का [illegible] सूखकर बिलकुल डोरी जैसा हो गया था। पैर

में सूजन आगई थी। ऐसी हालत में एक महानगर के बसस्टैण्ड के पास लम्बा हो कर यह भाई लेटा हुआ था। मैं इस महानगर में कार्यवश गया हुआ था। वस में चढ़ने से पहले मैंने इस भाई को ऐसी दुःखी हालत में देखा। बस से उतने वाले यात्री वहाँ किसी प्रकार का विलम्ब किये विना झटपट अपने-अपने काम के लिए चल पड़े और चढ़ने वाले यात्री चढ़ गए। पर मेरे पैर इस भाई को ऐसी हालत में देख कर आगे बढ़ने से रुक गए। मेरे लिए यह कार्य अव महत्त्वपूर्ण वन गया। मैंने उक्त दुःखित रोगी से कहा—"मेरे साथ आओगे!" वह भाई सुन कर बड़ा खुश हुआ। किन्तु वह अपने आप खड़ा हो सके, ऐसी स्थिति में न था। मैंने हाथ पकड़ कर उसे खड़ा किया। जव वस आई तव दूसरों की मदद से अपने साथ विठाया। एक-दो वसें वदलनी थीं, वे वदलीं। रास्ते में मैंने देखा कि पतले दस्त लगने से बेचारे रोगी का कपड़ा विगड़ गया है; इसलिए मैंने उसे साफ किया और वदला। फिर उसे पानी पिलाया और कहा—"चलो, हॉस्पिटल में। वहाँ दवा, भोजन और परिचर्या सव कुछ मिलेंगे। क्योंकि रास्ते में तुम्हें कोई भी खाने की चीज दूं; शायद वह हजम हो या न हो। इसलिए वहीं डॉक्टर खाने के लिए जो चीज कहेंगे, वही दी जायगी तो ठीक रहेगा।" यों सोच कर उस समय उसे कोई भी चीज खाने को न दी।

रास्ते में इस भाई के साथ मेरी वहुत-सी वातें हुई। वह भाई कहने लगा—"इस समय संसार में मेरा कोई सम्वन्धी नहीं है। पर मैं काफी अच्छा वेतन पाता था। काम भी मुझे वहुत अच्छा मिल जाता था। मगर चार महीनों से मुझसे अव कम नहीं होता। आँखों से कम दिखाई देता है। सचमुच इस मौके पर यह काव्यपंक्ति याद आजाती है—

"समय सरीखे सदा सबके न, होते; धूप और छाया।
भले होकर भला करना रख शत्रुओं पर (भी) माया।"

उसके वाद मैंने शहर के एक दूसरे सेवाभावी कार्यकर्त्ता को सारी स्थिति समझा कर कहा—"इस भाई को तत्काल योग्य इलाज और सेवा शुश्रूषा की जरूरत है। उन कार्यकर्त्ता की अपनी मोटर थी। उन्होंने अपनी मोटर में उस भाई को विठा लिया। कार दवाखाने की ओर रवाना होने लगी। रवाना होते

समय मैंने अपनी शक्ति की सीमा समझ कर उस रोगी भाई से विदा ली ! उसके दिल से मूक आशीर्वाद बरस रहे थे। नेत्रों के रास्ते अश्रु बिन्दुओं के जरिये वे प्रत्यक्ष देखे जा सकते थे। उसने मुझे उत्सुक मन से हाथ जोड़ कर 'जयन्जय' किए। कार दवाखाने पहुँची और रोगी को सब काम शीघ्र हो गया।

इसके बाद रोगी भाई के साथ जाने वाले कार्यकर्ता ने मुझे पत्र लिखा। उसका सार यह है—"ज्यों ही हम दवाखाने पहुँचे, त्यों ही रोगी को पलँग मिल गया। नर्स और परिचारक दोनों ने रोगी को आश्वासन देते हुए कहा—"अब तुम किसी बात की चिन्ता न करना, भाई ! यहाँ खाने-पीने को और दवा वगैरह सब कुछ मिल जायगा। अभी डॉक्टर साहब आएँगे और तुम्हें देख कर योग्य उपचार के लिए व्यवस्था कर देंगे। तुम बहुत जल्दी स्वस्थ हो जाओगे।"

जगत् में जिसका अपना कहने लायक कोई नहीं हो; उस रोगी को ऐसा मधुर आश्वासन क्या स्वयं आरामदायक नहीं होता ?

: ४१ :

आग बुझाने में सबका सहकार

[जैन आगम ठाणांगसूत्र में ग्रामधर्म, नगरधर्म, राष्ट्रधर्म आदि का उल्लेख है। उसको धर्म बताने के पीछे तात्पर्य यही है कि धर्मबुद्धि से ग्रामों, नगरों और राष्ट्रों के प्रति अपना कर्त्तव्य अदा करना है। जैसे अपने घर में आग लगे तो हर आदमी उसे आत्मीयता से बुझाने में जुट पड़ता है, वैसी ही आत्मीयता से वह ग्राम, नगर, राष्ट्र और अन्त में विश्व तक के प्रति हर कर्त्तव्य में जुट पड़े। यानी अपनी आत्मीयता को घर से लेकर विश्व तक बढ़ाता चला जाय तो उसने सच्चा धर्म पालन किया; ऐसा माना जायगा। जैसे बाह्य अग्नि बुझाने की बात है, वैसे ही आभ्यन्तर अग्नि शान्त करने में भी इस बात को घटाई जा सकती है। सद्भाग्य से गाँवों के लोगों में आज भी ग्रामधर्म पड़ा है। कहीं सोया हुआ है तो उसे लोक-

सेवक की प्रचारवायु से जगाना है। उसे काम में लगाना है। एक छोटे से गाँव में लगी हुई आग को बुझाने के लिए उस गाँव के और आसपास के गाँवों के लोग किस प्रकार अपने ग्रामधर्म का पालन करते हैं, इसकी प्रेरणा नीचे की यह घटना दे रही है—]

"दौड़ो रे दौड़ो ! सारा गाँव आग से जल रहा है।" इस प्रकार की आवाज से चारों ओर का वातावरण गूंज उठा। आसपास के गाँवों के लोग इकट्ठे हुए। फिर तो सबने मिल कर गाँव को आग के पंजे से बचा लिया। सवाल यह होता है कि सारा गांव आग की लपेट में कैसे आ गया ? कहते हैं राख के ढेर में आग की कुछ चिनगारियाँ रह गईं। ऐसी राख उकरड़ी पर पड़ी थी। अचानक हवा जोर से चली। चिनगारियों पर से राख उड़ गई और उसमें से एक चिनगारी उड़ कर पास ही लगी हुई घास की गंजी में पड़ गई। देखते ही देखते उसमें आग भभक उठी। लपटें उठने लगीं। पास ही कुछ लड़के खेल रहे थे, वे जोर-जोर से रोने-चिल्लाने लगे। पर आग क्या रोने-चिल्लाने से बुझ जाती ? पास ही जो झौंपड़े थे, वहाँ भी आग की लपटें पहुँची और पास ही जो घास की दूसरी गंजी थी, उसे भी चपेट में ले ली। इस प्रकार क्रमशः आग गाँव में फैल गई। धीरे-धीरे गाँव के अधिकांश लोग जाग पड़े। देखते ही वे हक्के-बक्के रह गए। सबने धूल की झोली भर-भरकर गाँव के बाहर ले जाकर आग में डालनी शुरू की। पर इतनी बड़ी आग बड़े साधनों के बिना कैसे शान्त होती ? ऐसी स्थिति में सभी अपने-अपने घर के आदमियों को, जानवरों को और माल-मिल्कियत को बाहर निकालने और उनकी रक्षा करने में जुट पड़े,। आग बुझाने का उत्साह अब लोगों में नहीं रहा।

सद्भाग्य से पड़ौसी गाँव में यह बात बिजली की तरह फैल गई। पड़ौसी-धर्म बजाने के लिए सभी लोग इस गाँव में दौड़े आए। पर यहाँ तो धूल भर भर कर डाली जा रही थी। चतुर अनुभवियों ने उनसे कहा—"और सब रहने दो, अब तो सिर्फ पानी लाओ।"

अब तो झटपट स्त्री, पुरुष और बच्चे सब पानी ढोने में जुट पड़े। पानी के कनस्तर भर-भर कर आने लगे। पानी के घड़ों की भी कतार लग गई। रात पड़ी तब मुश्किल से आग पर काबू पाया। मगर पानी ढोने का काम तो

दूसरे दिन तक चालू रहा। दूसरी ओर धूल के टोकरे पर टोकरे वहाँ जमा हो गए। पूरे दो दिनों में मुश्किल से आग बुझ पाई। गाँव के २७ घर और २७ चारे के वाड़े जल कर खाक हो गए। हजारों का नुकसान हो गया।

तुरंत ही गाँव के प्रति अपना धर्म समझ कर उस गाँव के और पड़ौसी गाँवों के लोगों ने मिल कर टीप करनी शुरू की—"गेहूँ ५० मन, कडव (चारे) के पूले १३०० और कुंदल १५० मन तथा नकद १३०) रुपये; वहीं के वहीं हो गए।

जिन-जिनका नुकसान हुआ था, उन्होंने और उनके सम्बन्धियों ने उन्हें साफ-साफ कह दिया "भाइयो ! आपकी सद्भावना के लिए हम आभारी हैं। पर हमें बाहर की सहायता की जरूरत नहीं है।"

उस समय मैं वहीं पर उपस्थित था। मैंने अग्निकाण्ड से पीड़ित भाइयों को समझाया—

"भाइयो ! इसमें उपकार का कोई सवाल नहीं है। यह तो सहकार का सवाल है। पड़ौसी को अपने पड़ौसी को आफत के समय सहयोग देना ही चाहिए। आज तुम्हारी बारी है, कल इनकी भी बारी आ सकती है। इसलिए इस सहायता का स्वीकार करने में तुम्हें कोई हिचक नहीं होनी चाहिए।"

अन्त में, वे समझे और इस शर्त पर मदद स्वीकार की कि "अच्छा वर्ष आने पर हम इसका प्रतिदान देंगे।" कितने ही लोगों ने श्रमदान के साथ मकान के लिए साधनों का लेना स्वीकार किया। कई लोगों का बोझ उनके सम्बन्धियों ने उठा लिया। ऐसे करीब ६ घर व्यवस्थित बनाने की जिम्मेवारी उनके सम्बन्धियों की ओर से उठा ली गई। लगभग १० गरीब कुटुम्बों ने कड़ब (चारा) और कुवल लेना स्वीकार किया। अनाज की तथा अन्य नकद रकम लगभग दो हजार रुपये की एकत्रित करके चौमासे से पहले करीब ९ व्यक्तियों को घर बना देने की जिम्मेवारी ली गई। इसमें से करीब ६००) इकट्ठे हो चुके थे। ६००) रु० या इससे कमोवेश जितनी रकम लगे, उतनी एक भाई ने अपना नाम प्रगट किए बिना देनी स्वीकार की। लगभग ८००) रु० की मदद इस प्रकार के कार्यों में मदद देने वाली संस्था की ओर से मिल जायगी, ऐसी सम्भावना थी।

यह सारी जिम्मेवारी प्रायोगिक संघ के उपप्रमुख और उस विभाग के धारा सभ्य (विधायक) वगैरह ने उठा ली थी। इस प्रकार पड़ौसी गांव, सम्बन्धी लोग, किसानमण्डल, प्रायोगिकसंघ, कांग्रेस की तहसील कमेटी वगैरह सभी समय पर इस पुण्य कार्य में मदद देने आ पहुँचे। सरकारी अधिकारी भी पहुँचे। सबने धर्मबुद्धि से अपना-अपना कर्त्तव्य अदा किया।

यही काम है धर्मदृष्टि से समाजरचना का ! यह चित्र कितना आनन्ददायक मालूम होता है ?

: ४२ :

जो होना था सो हो गया !

[नारी समाजजीवन का महत्त्वपूर्ण अङ्ग है। नारीजाति की अवगणना करना समाज के लिए पतन का कारण है। जिस समाज में या गांव में नीति का स्तर इतनी हद तक नीचा गिर गया हो कि सरे आम बहनों पर अत्याचार हो रहा हो, अश्लील या तुच्छ व्यवहार होता हो और उसे समाज के या गांव के लोग अपनी आँखों के सामने होते देख कर भी चुपचाप बैठे रहें, उसका अहिंसक प्रतिकार भी न करें, तो वहाँ रचनात्मक कार्यकर्त्ताओं का कर्त्तव्य हो जाता है कि ऐसी सामाजिक अशुद्धि को मिटाने के लिए जनता को जागृत करें। प्राचीन काल में समाज के अगुआ कहलाने वाले लोगों का बड़ा दबदबा था मतलब यह है कि समाज या गाँव ही समाज या गाँव का नैतिक पहरेदार था। आज वे नहीं रहे। इसलिए आज समाज की शुद्धि के लिए कार्यकर्त्ता को अपने तप-त्याग के द्वारा समाज को ही समाज के चौकीदार बनाने की प्रक्रिया पैदा किए बिना कोई चारा नहीं। ऐसी शुद्धि की प्रक्रिया में निखालिस दिल के कार्यकर्त्ता का गाँव, समाज और अपराधी व्यक्ति के हृदय पर अच्छा प्रभाव पड़ता है और उनके हृदय में वह पश्चात्ताप का झरना बहा सकता है; जिसमें नहा कर अपराधी की

आत्मा पवित्र बन जाती है। नीचे की घटना एक जागृत कार्यकर्त्ता द्वारा गोपालक बहन के प्रति उसके देवर द्वारा किये गए अत्याचार के विरुद्ध अहिंसक प्रतीकार की है। ऐसे प्रतीकार से हैवान सरीखे अपराधी गोपालक भाई में बैठा हुआ भगवान् जाग जाता है।]

"मैं देवर के साथ पुनर्विवाह नहीं करना चाहती। मुझे कहीं भी दूसरी जगह घर नहीं बसाना है। मैं अपने तीन बालकों का पालन-पोषण करूंगी और मेहनत-मजदूरी करके आनन्द से अपना गुजर-बसर करूँगी।" उपर्युक्त उद्‌गार....गाँव की एक भरवाड़न (गोपालक) बाई के थे; जिसे उसके पति के मरने के बाद गोपालक जाति में देवर के साथ फजियात पुनर्विवाह करने के रिवाज के अनुसार अपने देवर के द्वारा बहुत परेशानी थी। भरवाड़ कौम में यों तो अनेक कौमी दूषण हैं और भालनलकांठा के गोपालकमण्डल के प्रयत्न से इनमें से अनेक दूषणों को हटाया भी गया है। इनमें से एक दूषण था—देवर के साथ पुनर्विवाह का रिवाज। जिस देवर को उसकी भाभी ने पालने में भुलाया, उसी भाभी को उसके पति के मरने के बाद ऐसे अबोध बालक के साथ विवाह-सम्बन्ध जोड़ना पड़ता था। आज का सभ्य समाज अपनी रखवाली करने वाली माँ (गाय) के साथ सांड सहचार न करे इसके लिए उससे अलग रखता है, तो फिर एक मनुष्य जैसा मानव अपनी मातृसमा और पालक माता के समान भाभी के साथ ऐसा बेमेल विवाह-सम्बन्ध कैसे कर सकता है? यद्यपि इस घटना में भरवाड़ भाई तो बड़ी उम्र का था, फिर भी भाभी तो उसके लिए मातृसमा ही मानी जाती है। परन्तु इस विधवा भाभी की बात उसके देवर को पसन्द न थी। चाहे जिस बहाने से यह देवर अपनी इस भाभी को बार-बार दबाता डांटता-फटकारता था।

एक दिन इस भरवाड़न बाई को उसका देवर हैरान कर रहा था। इसलिए वह बहुत घबराई और मदद चाहने के लिए एकदम मुखियाजी के पास दौड़ कर पहुँची। मुखियाजी से उसने कहा—'मेरा देवर मुझे बारबार गालियाँ देता है, कभी-कभी मारता-पीटता है। उसकी नीयत सारी मिल्कियत और ढोर वगैरह हड़प जाने की लगती है। मुझे अपने बालकों को यहीं रह कर पालपोस कर बड़े करने हैं। इसलिए आप मुझे सहायता दें। मेरा देवर मुझे

फिर न सताए, ऐसा बन्दोबस्त कर दें। मैं उससे बहुत ही घबराती हूँ और दुःखित हूँ।"

मुखियाजी ने कहा—"तुम्हें रिपोर्ट करनी हो तो मैं कर दूँ। मगर तुम्हारा देवर किसी की मानने वाला नहीं है। इसलिए एकाध बार वह फौजदार के हाथ में आएगा तभी सीधा होगा।"

मुखियाजी के यों कहने पर बहन ने उन्हें रिपोर्ट लिख देने को कहा। फलतः मुखियाजी रिपोर्ट लिखने लगे। इस बात का पता बहन के उस देवर को लगते ही वह हाथ में लट्ठ लेकर गालियां बकता-बकता मुखियाजी के मकान पर आ धमका। उसने मुखियाजी के हाथ से रिपोर्ट का कागज छीन लिया और उन्हें भी गालियाँ देने लगा। अपनी भाभी का हाथ पकड़ कर गालियाँ देता-देता वह चलने लगा। बहन उसके साथ घिसटती जा रही थी। तथाकथित देवर ने उसे खड़ी हो जाने को कहा। परन्तु बहन ने उसके साथ जाने से इन्कार कर दिया। इसलिए वह गुस्से से झल्ला उठा और बाई को जबर्दस्ती घसीट कर खींचने लगा। इस समय का दृश्य देखने वाले को द्रौपदी के चीरहरण की करुण-कथा का विचार आए बिना नहीं रहता। एक ओर उसका देवर भरबाजार में उसे जबरन खींच कर ले जा रहा था और दूसरी ओर बहन अपने बचाव के लिए रास्ते पर करुण चित्कार कर रही थी। बाजार में बैठे हुए अगुआ और गाँव के लोग यह करुण दृश्य अपनी आँखों से देख रहे थे। परन्तु एक भरवाड़ (गोपालक) के डर से वे उसे किसी प्रकार की मदद न कर सके; कोई भी उनमें से हिलाडुला तक नहीं। इस बाई को आँसूभरी आँखों से जबरन चलना पड़ा। चलते-चलते रास्ते में एक जगह कुछ बहनों को बैठे देखा, जो अपने घर के दरवाजे पर खड़ी-खड़ी यह दृश्य देख रही थीं। इस बाई ने उनकी ओर सहायता की आशा से देखा और आश्रय लेने के लिए बैठ गई। पर वे सब पत्थर का दिल बना कर देखती रहीं, किसी ने भी उसे आश्वासन न दिया। अन्त में, वह निर्दय देवर बाई को जबरन घसीट कर घर ले गया। मुखियाजी से लिखाई हुई रिपोर्ट की चिट्ठी उसने फाड़ डाली और मनमानी गालियां बकने लगा।

इस बहन का तथाकथित देवर उसे घर ले जाने के बाद अंटसंट अपशब्द बोल रहा था। जब बहन का एक सगा भाई उसके देवर को समझा कर

उसे छुड़ाने आया; तब बहन के दो देवरों, दो देवरानियों और एक भरवाड़ भाई यों पाँचों ने मिल कर उसके सिर में कुल्हाड़ी मारी। इससे वह गश खा कर गिर पड़ा। परन्तु इस सम्बन्ध में पूछने पर उन्होंने साफ इन्कार कर दिया कि हमने तो इसे मारा ही नहीं; इसके भाई की लकड़ी ही इसके सिर में लगी है।

ऐसी दुर्घटना जिस गाँव में हुई; उस गाँव के एक भाई ने मुझे यह सारी घटना ब्योरेवार लिखी और तुरंत आने के लिए पत्र लिखा। मैं जरूरी पत्र मिलने से वहाँ से रवाना हो कर झटपट...गांव पहुँचा। मैंने इस करुण घटना की पक्की जाँच करनी शुरू की। मैंने उपर्युक्त प्रकार से लोगों के मुख से हूबहू जब यह बात सुनी तो मेरा खून खौल उठा। गाँव की ऐसी निर्बलता देख कर मैंने सबको उलाहना दिया। मैंने कहा—"गाँव में सरेआम ऐसा हो सकता है ? अरे ! बहनों के सामने एक बहन पर दिनदहाड़े ऐसा जुल्म गुजारा जाय, यह कैसे सहन हो सकता है ?"

गाँव के अगुआ कहने लगे—"आपकी बात सच्ची है। पर बिल्ली के गले में घंटी बाँधने कौन जाय ? इस भाई के खिलाफ हम चुंचपड़ करे तो वह अनेक तरह से हमें हैरान कर डाले ! कइयों को इसने हैरान किये भी हैं ! इसलिए फौजदारी रास्ते से इस पर तुरंत कदम उठाना चाहिए।"

"परन्तु शारीरिक सजा से क्या होता है ? ऐसे लोग जो शारीरिक दण्ड और कानून को घोल कर पी जाने वाले हैं। इसलिए स्थानीय समाज को स्वयं ही इस प्रश्न को हाथ में लेना चाहिए। बाई को न्याय मिले, उस भरवाड़ भाई की भी सच्ची जाँच हो, जिसके सिर में चोट लगी है, ऐसा कुछ करना चाहिए।"

गाँव के लोग गहरे मंथन में पड़ गए। मैंने उसी दिन घोषणा की—"यह बाई जब तक निर्भय न बने, इसे सच्चा न्याय न मिले और जहाँ तक इसका देवर अपनी की हुई गलती को पश्चात्ताप करके, क्षमा माँग करके पुनः ऐसा न करने का विश्वास न दिलाए; तब तक मैं इस गाँव का भोजन ग्रहण नहीं करूँगा। मेरी प्रार्थना है कि गाँव के लोग मुझे इस काम में सहयोग दें।"

यह सुनते ही गाँव के लोगों में हलचल मची। सबने एक स्वर से इस काम में सहयोग देना स्वीकार किया।

जमीन दिलाने की मुझसे माँग की। मैंने उसे यथोचित आश्वासन दिया, इससे वह खुश हुआ।

एकवार उसका छोटा भाई वीमार पड़ा। तब में फौरन उसके यहाँ पहुँचा। एक वार इस भाई को वहुत सख्त मार पड़ी, तव मैं इसे आश्वासन देने दवा-खाने पहुँचा। इसकी पत्नी रो रही थी, उसे भी ढाढस बंधाया। यद्यपि उसकी पत्नी तो उसे पीटने वाले के प्रति अत्यन्त रोष में थी। परन्तु वह बोला—"जो कुछ बनना हो, वही बनता है। जो होना था, वह हो गया।" अन्ततोगत्वा इस भाई की तबियत विगड़ गई थी, तब मैं उसके पास बराबर जाता। अन्त में, मैं अपने प्रति उसकी कोमल भावनाओं के दर्शन कर सका। उसके लिए मैंने परमात्मा का आभार माना।

मैंने उसके हार्दिक उद्गार सुने—"सचमुच, मेरे लिए जो होना चाहिए था, वही हुआ है। यदि आपने प्रयत्न न किया होता तो मेरी अक्ल ठिकाने नहीं आती।" ऐसे हृदय-परिवर्तन के उद्गार सुन कर मुझे आनन्द हुआ। ईश्वर की कैसी अपार दया है! आखिर सबके हृदय में राम तो मौजूद हैं ही। मनुष्य की दृष्टि बदलते ही उसका हृदय बदल जाता है।

: ४३ :

बलात्कार के अपराधी को सामाजिक दण्ड

[शहरों में आज कुटुम्बरचना कर्त्तव्यमय या धर्मनिष्ठ होने के बजाय प्रायः काममय बन गई है। उसके कारण स्कूलों; कॉलेजों, क्लबों अथवा सिनेमाओं वगैरह स्थानों में जवान लड़के युवतियों से छेड़खानी करने, गुंडागर्दी और बलात्कार करने आदि अनिष्टों में फँसते हैं। दूसरे लोगों की ओर से भी शहरों में बलात्कार की मात्रा कम नहीं है। इसका चेप गाँवों को भी लगा है। गाँवों के युवक भी रेडियो और फिल्मी गायनों के कारण इस बुराई में धीरे-धीरे लिपटते जा रहे हैं। सरकारी अदालतों में अपराध पकड़े जाने [illegible] ऐसे दुश्चरित्र युवकों को

उसे छुड़ाने आया; तब बहन के दो देवरों, दो देवरानियों और एक भरवाड़ भाई यों पाँचों ने मिल कर उसके सिर में कुल्हाड़ी मारी। इससे वह गश खा कर गिर पड़ा। परन्तु इस सम्बन्ध में पूछने पर उन्होंने साफ इन्कार कर दिया कि हमने तो इसे मारा ही नहीं; इसके भाई की लकड़ी ही इसके सिर में लगी है।

ऐसी दुर्घटना जिस गाँव में हुई; उस गाँव के एक भाई ने मुझे यह सारी घटना ब्योरेवार लिखी और तुरंत आने के लिए पत्र लिखा। मैं जरूरी पत्र मिलने से वहाँ से रवाना हो कर झटपट‥‥गाँव पहुँचा। मैंने इस करुण घटना की पक्की जाँच करनी शुरू की। मैंने उपर्युक्त प्रकार से लोगों के मुख से हूबहू जब यह बात सुनी तो मेरा खून खौल उठा। गाँव की ऐसी निर्बलता देख कर मैंने सबको उलाहना दिया। मैंने कहा—"गाँव में सरेआम ऐसा हो सकता है ? अरे ! बहनों के सामने एक बहन पर दिनदहाड़े ऐसा जुल्म गुजारा जाय, यह कैसे सहन हो सकता है ?"

गाँव के अगुआ कहने लगे—"आपकी बात सच्ची है। पर बिल्ली के गले में घंटी बाँधने कौन जाय ? इस भाई के खिलाफ हम चुंचपड़ करें तो वह अनेक तरह से हमें हैरान कर डाले ! कइयों को इसने हैरान किये भी हैं ! इसलिए फौजदारी रास्ते से इस पर तुरंत कदम उठाना चाहिए।"

"परन्तु शारीरिक सजा से क्या होता है ? ऐसे लोग जो शारीरिक दण्ड और कानून को घोल कर पी जाने वाले हैं। इसलिए स्थानीय समाज को स्वयं ही इस प्रश्न को हाथ में लेना चाहिए। बाई को न्याय मिले, उस भरवाड़ भाई की भी सच्ची जाँच हो, जिसके सिर में चोट लगी है, ऐसा कुछ करना चाहिए।"

गाँव के लोग गहरे मंथन में पड़ गए। मैंने उसी दिन घोषणा की—"यह बाई जब तक निर्भय न बने, इसे सच्चा न्याय न मिले और जहाँ तक इसका देवर अपनी की हुई गलती को पश्चात्ताप करके, क्षमा माँग करके पुनः ऐसा न करने का विश्वास न दिलाए; तब तक मैं इस गाँव का भोजन ग्रहण नहीं करूँगा। मेरी प्रार्थना है कि गाँव के लोग मुझे इस काम में सहयोग दें।"

यह सुनते ही गाँव के लोगों में हलचल मची। सबने एक स्वर से इस काम में सहयोग देना स्वीकार किया।

इसके वाद मैं स्वयं उस वहन से मिला। उसका दुःख सुन कर मेरा मन खिन्न हो कर रो पड़ा। मुझे लगा कि इसके लिए मुझे कुछ न कुछ योग्य उपाय करना चाहिए। मुझे अपना कर्तव्य पुकार-पुकार कर बुला रहा था। इसलिए इस सम्बन्ध में मैंने एक पत्र व्योरेवार पू० मुनिश्री संतबालजी को लिखा।

पू० महाराजश्री ने इस प्रश्न के सम्बन्ध में जल्दी से जल्दी उचित जाँच करके योग्य सहयोग देने के लिए गोपालक-मंडल के कार्यकर्ता को तार द्वारा सुचित कराया। इस अर्से में मुझे भोजन के लिए दो दिन तक नजदीक के गाँव में जाना पड़ा।

मेरे मन में तीव्र मंथन चल रहा था। इस प्रश्न को हल करने के लिए मुझे यह स्फुरणा हुई कि ऐसे मौके पर मुझे कुछ तपश्चर्या करनी चाहिए। इसलिए मैंने भोजन करना वन्द कर दिया। मैं एक शंकर के देवालय में वैठ कर स्वाध्याय और प्रार्थना करने लगा। लोगों का जमाव होने लगा। गाँव के एक-दो अगुए भी मेरी सहानुभूति में मेरे साथ निराहार रहे। मेरा एक उपवास पूरा हुआ। दूसरा उपवास चल रहा था, तभी गोपालक मंडल के कार्यकर्ता और कई अग्रगण्य व्यक्ति आ पहुँचे। उन्होंने इस प्रश्न के वारे में जाँच की।

इसके वाद न्याय देने के सम्बन्ध के वहन के देवर को गोपालक-मंडल के कार्यकर्ता भाई तथा अगुओं ने बहुत समझाया। पहले तो वह जरा हेरा-फेरी करने लगा। किन्तु अन्त में वह मान गया और जाहिर में हाथ जोड़कर सवसे माफी मांगी। अपनी की हुई गलती स्वीकार की। तथा कहा "मैं आयंदा भाभी को किसी प्रकार से हैरान नहीं करूँगा।" इस प्रकार वहन को निर्भयता के आश्वासन देने के साथ-साथ जाति को मुचलका भी दे दिया। गाँव के ७-८ मुख्य अगुओं और ११ गाँव के करीव १४ भरवाड़ भाइयों के सामने उसने यह इकरार किया। मेरा पारणा हुआ। यह प्रश्न गोपालक-मण्डल के कार्यकर्ता, ग्रामजनों और हमारे सव के प्रयत्नों से अच्छी तरह हल हो गया। इस तरह निश्चिंत हो जाने के वाद उस वहन को उस देवर ने कभी हैरान किया हो, ऐसा मेरे सुनने में नहीं आया। वहन अव सुखी है। उसके तीनों वालक अव वयस्क हो चुके हैं।

इसके बाद वह गोपालक भाई (बहन का देवर) मुझे एक दिन अपने घर भोजन के लिए ले गया; पर उसके मन में मेरे प्रति अभी तक द्वेषभाव था। वह और उसके सम्बन्धी मुझे अपना शत्रु मानते मालूम होते थे; क्योंकि वे मेरे सामने कड़ी नजर से देखते थे। मैंने यह मसला हाथ में लिया, वह उसे अच्छा नहीं लगा था। इस प्रकार कुछ अर्से तक उसने मेरे प्रति क्रोधावेश रखा।

एक दिन वह मनमाने अपशब्द बोलता हुआ मेरे निवासस्थान पर लट्ठ ले कर आ धमका। उस समय दो तीन स्नेहीजन मुझे मदद करने की भावना से दौड़कर आए। उस भाई ने मुझसे कहा—"तुम मेरा क्या बिगाड़ लोगे? मैं तुम्हें देख लूँगा!" मैंने इस गोपालक भाई को समझाया और उसे सत्य समझ में आ जाय, इसके लिए मैं प्रयत्न कर रहा था। पर वह तो आवेश में था, इसलिए मेरी बात सुनी-अनसुनी करके घडीभर चिल्लाकर अपने घर चला गया। मेरे मन में तो उनके प्रति द्वेष होता ही कैसे? मगर उस दिन के बाद उसने मेरे लिए कोई मुश्किली पैदा नहीं की।

एक दिन अचानक मेरी मुठभेड उससे हो गई। मैंने कहा—"राम-राम!" वह खड़ा रह कर मेरा हाथ पकड़ कर बोला—"कैसा रामराम? क्या ऐसा तुम्हें करना उचित था? मुझ पर इतनी ज्यादती!" मैंने कहा—"मेरी बात तुम्हें आज समझ में नहीं आएगी। पर जो कुछ हुआ है, वह तुम्हारे हित में हुआ है। वह तुम्हें बाद में समझ में आयेगा। तुम मेरे दुश्मन नहीं हो। मैं तो तुम्हें अपना भाई ही मानता हूँ। परन्तु तुम इस प्रकार सरेआम अन्याय करो; यह मुझसे कैसे सहा जा सकता था? मुझे और समाज को तो इसके खिलाफ लालबत्ती दिखा देनी चाहिए थी न?"

वह इस बातचीत पर से ठंडा तो हो गया। परन्तु अभी सम्पूर्णरूप से उसका असर नजर नहीं आता था। मैं उसके सामने हमेशा प्रेमभाव से देखने का प्रयत्न करता रहता और उसके लिए मैं कुछ उपयोगी बनूँ; ऐसी भावना भी रखता। फलतः धीरे-धीरे उसका आवेश कम होता गया।

एक दिन वह मेरे पास आया और खेती करने के लिए अपने लिए थोड़ी-सी

जमीन दिलाने की मुझसे माँग की। मैंने उसे यथोचित आश्वासन दिया, इससे वह खुश हुआ।

एकवार उसका छोटा भाई वीमार पड़ा। तब में फौरन उसके यहाँ पहुँचा। एक वार इस भाई को वहुत सख्त मार पड़ी, तब मैं इसे आश्वासन देने दवाखाने पहुँचा। इसकी पत्नी रो रही थी, उसे भी ढाढस वंधाया। यद्यपि उसकी पत्नी तो उसे पीटने वाले के प्रति अत्यन्त रोष में थी। परन्तु वह वोला—"जो कुछ वनना हो, वही वनता है। जो होना था, वह हो गया।" अन्ततोगत्वा इस भाई की तबियत विगड़ गई थी, तव मैं उसके पास वरावर जाता। अन्त में, मैं अपने प्रति उसकी कोमल भावनाओं के दर्शन कर सका। उसके लिए मैंने परमात्मा का आभार माना।

मैंने उसके हार्दिक उद्‌गार सुने—"सचमुच, मेरे लिए जो होना चाहिए था, वही हुआ है। यदि आपने प्रयत्न न किया होता तो मेरी अक्ल ठिकाने नहीं आती।" ऐसे हृदय-परिवर्तन के उद्‌गार सुन कर मुझे आनन्द हुआ। ईश्वर की कैसी अपार दया है! आखिर सवके हृदय में राम तो मौजूद हैं ही। मनुष्य की दृष्टि वदलते ही उसका हृदय वदल जाता है।

: ४३ :

वलात्कार के अपराधी को सामाजिक दण्ड

[शहरों में आज कुटुम्वरचना कर्त्तव्यमय या धर्मनिष्ठ होने के वजाय प्रायः काममय वन गई है। उसके कारण स्कूलों; कॉलेजों, क्लवों अथवा सिनेमाओं वगैरह स्थानों में जवान लड़के युवतियों से छेड़खानी करने, गुंडागर्दी और वलात्कार करने आदि अनिष्टों में फँसते हैं। दूसरे लोगों की ओर से भी शहरों में वलात्कार की मात्रा कम नहीं है। इसका चेप गाँवों को भी लगा है। गाँवों के युवक भी रेडियो और फिल्मी गायनों के कारण इस बुराई में धीरे-धीरे लिपटते जा रहे हैं। सरकारी अदालतों में अपराध पकड़े जाने पर ऐसे दुश्चरित्र युवकों को

कदाचित शारीरिक दण्ड मिल भी जाय, परन्तु उससे उसकी सामाजिक प्रतिष्ठा में कोई आँच नहीं आती और न उसके जीवन में कोई सच्चा परिवर्तन होता है। परन्तु यदि समाजसेवकों की प्रेरणा से ऐसे चरित्रभ्रष्ट युवकों को समाज के सामने जाहिरातौर पर अपनी भूल का स्वीकार करवा कर माफी मँगवा कर सामाजिक दण्ड दिलाया जाय तो उनका हृदय-परिवर्तन भी हो और समाज ऐसे लोगों से सावधान भी रहे। नीचे की घटना एक ग्रामीण युवक द्वारा एक १२ वर्ष की लड़की के साथ किए गए बलात्कार के अपराध की है। जिसके लिए उसे दिये गए सामाजिक दण्ड का चारों ओर कितना सुन्दर असर होता है; पाठक इसमें पढ़ें।]

"सुबह का समय था। ……… गाँव में एक किसान की लड़की अपने काम के लिए बाहर जा रही थी। इसी बीच एक युवक ने मौका देख कर इस लड़की को पकड़ी। लड़की बहुत घबराई। उसने चारों ओर देखा। परन्तु और कोई मनुष्य दिखाई न दिया। वह जोर जोर से रोने और चिल्लाने लगी। पर वहाँ सुने कौन? युवक ने उसके साथ बलात्कार किया। लड़की को बहुत ही परेशानी हुई। वह रोती-रोती अपने घर आई और उसने अपने अभिभावकों से सारी बात कही।

उसे सुन कर अभिभावकों को अत्यन्त दुःख हुआ। उन्हें उस युवक पर बहुत ही रोष उबल पड़ा। उन्होंने लड़की का योग्य उपचार किया। इस लड़की के अभिभावकों को उस युवक को अक्ल ठिकाने लाने के लिए किसी ने सलाह दी कि इस पर फौजदारी मुकद्दमा चलाओ। इसलिए उन्होंने फौजदारी मुकद्दमा दर्ज कराया।

दूसरी ओर गाँव के एक सज्जन ने उस युवक के इस दुष्कृत्य का भंडाफोड़ किया और उस गुनाहगार को इसका पूरा प्रायश्चित्त कराने के लिए कदम उठाया। इसमें अनेक लोग सहमत हुए। जुलूस वगैरह निकाले। दीवारों पर पोस्टर (पत्रिकाएँ) चिपकाए और सारे गाँव में इस दुष्कृत्य को निन्दित करने की कार्यवाही जोर-शोर से शुरू हुई।

इसके बाद अपराधी के अभिभावकों और दूसरे कुछ अगुओं ने मिल कर

ऐसा निश्चय किया कि "पू० मुनिश्री संतबालजी महाराज के सामने यह प्रश्न रखा जाय और वे जो न्याय दें, उसे अपराधी स्वीकार करे।"

अतः गाँव के दो-तीन भाइयों ने पू० महाराजश्री के सामने इस घटना की सभी बातें प्रस्तुत कीं। महाराजश्री को सुन कर बड़ा दुःख हुआ। इसके बाद पू० महाराजश्री के सान्निध्य में सबने मिल कर इस पर विचार किया। पू० महाराजश्री ने एक राय यह दी कि "हमें पैसे को महत्त्व नहीं देना है। अर्थात् अपराधी को आर्थिक दण्ड या शारीरिक दण्ड न दिया जाय, पर ऐसा दण्ड दिया जाय, जिससे सामाजिक न्याय मिल सके।

परन्तु हम सबको ऐसा लगा कि "भले ही हम पैसे को महत्त्व न दें, परन्तु इस प्रश्न में व्यावहारिक दृष्टि से कुछ न कुछ आर्थिक दण्ड देना ही चाहिए।" इसलिए ऐसा निर्णय किया कि "५०१) रु० ग्रामहित के लिए अपराधी दे। परन्तु साथ ही अपराधी के कपाल पर काजल का काला तिलक किया जाय। अपराधी अपना अपराध स्वीकार करे और लिखित रूप से माफी मांगे।"

इस प्रकार का निर्णय होने से अपराधी के अभिभावकों से अमुक भाइयों ने आर्थिक दण्ड वसूल करने के लिए मांग की। फलतः उनके चचेरे भाइयों ने ५०१) रु० अपराधी की ओर से दे दिए। अपराधी के कपाल पर काजल का काला तिलक किया गया। अपनी गलती के लिए उसने लिखितरूप से क्षमा मांगी। इस प्रकार यह प्रश्न सामाजिक अदालत में अच्छी तरह हल हो गया।

परन्तु कोर्ट में मुकद्दमा तो अब भी चालू था। यह मुकद्दमा रद्द हो जाय, इसके लिए प्रामाणिक कदम उठाने हेतु मैं स्वयं पुलिस इन्स्पेक्टर से रूबरू मिला मैंने उन्हें बताया कि सामाजिक रूप से जब यह काम निपट चुका है तो अब अपराधी को फौजदारी मुकद्दमे से बरी कराना चाहिए। पुलिस इन्स्पेक्टर ने विश्वास दिलाया कि मैं यथाशक्ति प्रयत्न करूंगा। अपराधी को सरकारी तौर पर जरा भी हैरान नहीं किया जायगा।"

मुकदमा चला। आखिर अपराधी को सिर्फ ७ दिन की जेल की सजा हुई और सरकारी मुकद्दमे का निराकरण हुआ।

परन्तु अब अपराधी के कुटुम्बियों को यों लगा कि अपराधी को ७ दिन की कैद की सजा हुई है। अतः ग्राम (कमेटी को ५०१) रु० हमें वापिस

दे देने चाहिए। पू० महाराजश्री की भी ऐसी इच्छा थी कि "अपराधी के आँसू पोंछना ठीक है।" मगर २५०) रु० तो मेरे कहने से ग्रामहित के काम में लगा दिये गए थे। अतः ग्रामजनों में इस विषय में मतभेद खड़ा हुआ। एक भाई का कहना था कि पूरी रकम ग्रामहित के काम में खर्च कर देनी चाहिए। दूसरे भाई का कहना था कि सारी रकम वापिस देनी चाहिए। इस मतभेद से मन में दुःख उत्पन्न हुआ। यह रस्साकस्सी काफी अर्से तक चली। अन्त में, २५०) रुपये, जो बचे थे, वे अपराधी के अभिभावकों को वापिस लौटाए गए। इस प्रकार एक-दूसरे के मन का समाधान हुआ।

: ४४ :

जनसेवा में संलग्न कार्यकर्त्री की कसौटी

[उद्दण्ड या चौदसिया तत्त्व लगभग गाँव-गाँव में फैले हुए हैं। दण्डशक्ति और उद्दण्ड तत्त्व दोनों की प्रायः पटरी बैठ जाती है। जहाँ ये दोनों मिल जाते हैं, वहाँ सरकार और जनता दोनों ही इन दोनों के आधीन हो जाते हैं। ऐसे उद्दण्ड तत्त्वों के दुष्कृत्यों को दवे हुए या आर्थिक दृष्टि से पराधीन बने हुए गाँव के लोग भी कई बार चुपचाप सह लेते हैं। जनसेवा में जुटे हुए कार्यकर्ताओं को भी जनता को अपने कब्जे में करके वे लाञ्छित करने का प्रयास करते हैं। अतः शुद्ध जनशक्ति के संगठित बल को साथ ले कर वे समाजसेवक-सेविकाएँ समाज-निर्माण का काम करेंगे तो उद्दण्डतत्त्व लम्बे समय तक उद्दण्डता चला नहीं सकेंगे और जनता की शुद्ध नैतिक शक्ति के आगे उन्हें झुकना ही पड़ेगा। नीचे की घटना इसकी साक्षी दे रही है।]

....गाँव में एक जबर्दस्त कहलाने वाले व्यक्ति ने वर्षों से सेवाकार्य में संलग्न एक बहन के लिए इरादेपूर्वक गलत प्रचार शुरू कर दिया। उसने यह विचार तक भी न किया और जगह-जगह गाँव में मनचाहे अपशब्द कह कर झूठमूठ बदनाम करने तथा उसके चरित्र पर लांछन लगाने का प्रयत्न किया।

यह भी विश्वस्तसूत्र से पता लगा कि एक राजनैतिक संस्था के तहसील के एक कार्यकर्ता ने इस खोटे प्रचार का जाने-अनजाने समर्थन भी किया है।

यह सब सुन कर सबको बहुत दुःख हुआ। मैंने पूरी तरह से जाँच की और सम्बन्धित व्यक्तियों से लिखित निवेदन भी ले लिये। मुझे उलटे प्रचार करने वाले व्यक्ति की बात बिलकुल झूठी लगी। मैंने पू० महाराजश्री को एक पत्र इस आशय का लिखा—"·····बहन ने वर्षों से अपना जीवन समाज-सेवा के लिए समर्पित कर दिया है। ऐसी पवित्र चरित्रशीला बहन के चारित्र्य के लिए कोई लांछन लगा रहा हो, खोटे प्रचार के कातिल बाण फेंकता हो, बत सामाजिक रूप से कुछ न कुछ न्यायोचित करना चाहिये।····शुद्धिप्रयोग समिति के सामने यह प्रश्न पेश किया गया।····समिति को लगा कि समाज-निर्माण की दृष्टि से यह प्रश्न बहुत ही महत्त्वपूर्ण है।····"

इसके बाद तो अनेक कार्यकर्ता भाई-बहन इसके लिए शुद्धिप्रयोग करना पड़े तो तैयार हो गए और उस गांव में जा पहुँचे। परन्तु वे जबर्दस्त कहलाने वाले लोग वहाँ हाजिर नहीं थे। कुछ दिन बीते। इसी दौरान इस गाँव में मुहल्ले-मुहल्ले में सार्वजनिक सभाएँ हुई और उनमें ये बातें रखीं गई। अन्ततः सभी यह कहने लगे—"इस आदमी ने ऐसी कातिल बातें भले ही कही हों, उस कार्यकर्त्री····बहन के चरित्र के लिए हमारे दिल में बहुत सम्मान है। इसके लिए हमें गहरा दुःख हुआ है। परन्तु कुछ तो हम आर्थिक दृष्टि से पराधीन और कुछ दूसरी बातें हैं, जिसके कारण हम क्या कर सकते हैं? हमारी जबान चलती नहीं।' लोगों की यह कमजोरी सचमुच खटकने वाली थी, परन्तु बिखरे-बिखरे (असंगठित) लोग प्रायः ऐसी दशा में ही जीते हैं! कहीं-कहीं जबर्दस्त लोग उदार से जरूर मालूम होते हैं; मगर अन्दर से तो शोषणनीति में वे पूरे शूर होते हैं? धीरे-धीरे इस झूठे आरोप के प्रति धिक्कार भरा वातावरण जमने लगा।

एक बार वह जबर्दस्त समझा जाने वाला भाई गाँव में आया। उससे मण्डल के प्रमुख, मंत्री तथा शुद्धिप्रयोग-समिति के मंत्री के रूप में मैं; यों हम सभी मिले। उस व्यक्ति ने पहले तो हम तीनों को खूब उफान डाले—

"मैंने····बहन के लिए कुछ भी नहीं कहा। क्या तुम कहते हो, वही बात सच्ची है ? दूसरे सब झूठे हैं ? जाओ, मुझे गाँव से निकाल देना····तुम्हारे पास दूसरा कोई काम धंधा है या नहीं ?"

परन्तु उसके कथन के विरुद्ध मेरे पास पक्के सबूत तैयार थे। इसलिए वह कुछ बोला नहीं। वह झूठी बात तो एक क्षण भी टिक न सकी। गलती मनुष्य के पैर ढीले कर देती है। इसलिए वह जबर्दस्त भाई अब निरुत्तर और ढीले हो चुके थे।

आखिर एक दिन सुबह ९ बजे के लगभग वह भाई गाँव के एक अगुए को साथ लेकर आया और जिस कार्यकर्त्री बहन के चरित्र पर उसने आक्षेप किया था, उससे दोनों हाथ जोड़ कर क्षमा माँगी। हमने उससे नम्र निवेदन किया—"अब आपका हृदय-परिवर्तन हुआ है, इसे मैं प्रभु की परम दया समझता हूँ। पर आप जाहिर में भूल का इकरार करके माँफी माँग सकेंगे न ?" उसने इस बात को मंजूर किया।

रात को लगभग २०० मनुष्यों की गाँव के सदर चौक में हुई सभा में मंडल (किसानमंडल) के मंत्रीजी ने यह सारी घटना ब्योरेवार प्रस्तुत की। ऐसी उटपटांग, किन्तु भयङ्कर बातों का ग्रामवासियों को जाहिरातौर पर विरोध करना चाहिए था; वह नहीं किया, उसके लिए भी मीठा उलहना दिया और संतोप व्यक्त किया कि "वह भाई अब अपनी गलती के लिए जाहिर में माफी माँगने को तैयार हुए हैं।"

फिर तो जबर्दस्त कहलाने वाले भाई ने जाहिर में अपनी गलती स्वीकार करते हुए माफी माँगी और कहा—"····बहन के चारित्र्य के लिए मैंने झूठा प्रचार किया, वह मेरी गम्भीर भूल हुई है। इस भूल के लिए मैं पश्चाताप प्रकट करता हूँ। और इन बहनजी से और जाहिर जनता से क्षमा माँगता हूँ। आयंदा ऐसी भूल न हो, उसके लिए मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ।"

सभा में इसकी प्रतिक्रिया अच्छी मालूम हो रही थी। लोग कहने लगे—"····भाई माफी माँग रहे हैं, यह तो अनोखी बात है। बहुत अच्छा हुआ। ऐसा ही होना चाहिये था।"

हम सबको लगा कि····भाई जैसा व्यक्ति स्वयं आ कर इस तरह जाहिर

में पश्चात्ताप प्रकट करते हुए अपनी भूल स्वीकार करके क्षमा माँगे; इससे अधिक अब कुछ करना शेष नहीं रहता। ईश्वरकृपा से ....शुद्धिप्रयोग-समिति को यश मिला और कार्य में सफलता प्राप्त हुई।

: ४५ :

तीन बालिकाओं की रक्षा के लिए प्रेरणाप्रद सहयोग

[शहर भले ही अपने नगरधर्म के पालन से च्युत हो गए हों, परन्तु गाँव अभी तक अपना ग्रामधर्म प्रायः बजाते ही हैं। शहर के भाइयों पर किसी प्रकार की आफत आ पड़ी हो और वे गाँवों का सहयोग मांगें और वह ग्रामजनों के कर्तव्य की सीमा में हो तो गाँव के लोग उत्साहपूर्वक सहयोग देने को तैयार हो जाते हैं। पुलिस या पुलिसविभाग अथवा अधिकारीगण इतना बड़ा साहस करके एक शहर से अपहृत की हुई कन्या का पता नहीं लगा सकते; जितना धर्मदृष्टि से समाजरचना के प्रेरक संत की प्रेरणा से चल रहे व्यवस्थित ग्रामसंगठन दीर्घदृष्टि और धर्मदृष्टि से शोध-खोज करने में सहयोग दे सकते हैं। एक छोटे-से गाँव के किसान-अग्रणी ने किस प्रकार तीन अपहृत कन्याओं का पता लगाया और उन्हें अपने अभिभावकों को सौंप कर संतुष्ट किया; यह नीचे की प्रेरणाप्रद घटना में पढ़िए।]

शाम के लगभग ४ बजे होंगे। मैं अपने घर पर बैठा अखबार पढ़ रहा था। उसके एक पेज पर बड़े अक्षरों में शीर्षक था—"खंभात की तीन बालिकाओं का अपहरण!" मैंने इस समाचार का सारा विवरण रुचिपूर्वक पढ़ा और पास बैठे हुए कुछ लोगों को यह खबर सुनाने लगा। इतने में तो एक भाई बोले—'हमारे गाँव की सीमा पर रेल्वेलाइन के पास किसी बाघरी द्वारा किन्हीं अज्ञात कन्याओं को ले कर जाने की बात तो एक भरवाड़ (गोपालक) की लड़की कहती थी।" यह सुन कर मैंने सोचा—"हमारे गाँव की सरहद से हो कर यदि कोई इस तरह बालिकाओं का अपहरण करके ले गया हो तो मानवता के

नाते हमारा नैतिक कर्तव्य हो जाता है कि हम इसके लिए भरसक पुरुषार्थ करें।"

इसके वाद हम गोपालकवास में गए। वहाँ उस गोपालककन्या से हमने पूछा तो उसने घवराते हुए कहा—"काका! मुझ पर कोई आपत्ति तो नहीं आएगी न?" मैंने उसे आश्वासन देते हुए कहा—"तू घवरा मत। जो तूने देखा हो, वह वता दे।" वह कहने लगी—"मैं आज छोटे वछड़ों को ले कर चराने गई थी। धूप वहुत तेज पड़ रही थी। इसलिए मैं एक पेड़ की छाया में वैठी। वहाँ तीन लड़कियाँ एक कपड़ा ओढ़ा कर सुलाई हुई थीं। उन लड़कियों के पास ही दो वाघरी और एक वाघरन थी। औरत रोटी वना रही थी। एक तपेली में साग वन रहा था। वे लड़कियाँ आपस में वात कर रही थीं—"तेरी मां क्या करती होगी?" "मेरी मां रोती होगी"; यों कहती हुई लड़की की वात जव मैंने सुनी तो मुझे वहम पड़ा। मैंने उनके ऊपर से कपड़ा हटा कर देखा तो वे चड्डी व फ्राक पहने थीं तथा उनकी चोटियाँ वंधी हुई थीं। मैंने अनुमान लगा लिया कि "ये लड़कियाँ वाघरी की तो नहीं हैं।" अपने एक दादा से जो थोड़ी-सी दूर वैठे थे, यह वात कही तो उन्होंने कहा—"तुझे क्या मतलव है?" उसके वाद मैंने अपनी माँ से यह वात कही। मेरी मां ने हमारे मुहल्ले में लोगों से कहा। उसके वाद क्या हुआ? मैं नहीं जानती।"

इसके वाद जव हम रात को भोजन कर रहे थे तव मेरा छोटा भाई वोला—"भाई! यह·······वाघरी तो नहीं है?" मैंने कहा—"वह यहाँ कहाँ से आता?" उसने कहा—"मैंने उसे·······भाई की दूकान से प्याज खरीदते हुए देखा था। उससे मैंने यहाँ से प्याज खरीदने का कारण पूछा तो उसने कहा—'····गाँव में प्याज नहीं मिलता। इसलिए मैं यहाँ से प्याज लेने आया हूँ।' इस आदमी को मेरा छोटा भाई पहिचानता था, क्योंकि ये लोग·······गाँव से हमारे गाँव में गेहूँ काटने आए थे। इसके वाद हम लोगों ने इसकी खातरी करने के लिए उस गोपालक कन्या के साथ, वे (वाघरी व०) जहाँ ठहरे थे, वहाँ कुछ लोग भेजे। वहाँ देखा तो प्याज के छिलके पड़े थे। उन्हें ····वाघरी के यहाँ आने की पक्की खातरी हो गई। उन्होंने वहाँ से आ कर हमें सारी वात कही। इसलिए एक के वाद एक सभी आसार मिल जाने से हमारे

मन में·······भाई वाघरी के द्वारा बालिकाओं का अपहरण करने की शंका पक्की हो गई।

अब सवाल यह हुआ कि वह वाघरी किस ओर गया होगा? हमें यह कल्पना भी न थी कि ये लोग रेल में बैठ कर दिल्ली गये होंगे। इसलिए मैंने गाँव के कुछ युवकों को घोड़े तैयार करवा कर आस-पास के गाँवों में खोज करते हुए ठेठ लींबड़ी तक जा कर वाघरी का पता लगाने के लिए भेजे। ये घोड़े ५ बजे रवाना हुए। दूसरे और दो घोड़े हमने बाद में उनके पीछे भेजे।

उसके बाद मेरे मन में विचार आया कि बेचारे कन्याओं के माता-पिता खंभात में शोध-खोज करते होंगे। उनकी चिन्ता कम करने के लिए हमें ट्रंक-कोल द्वारा खबर देनी चाहिए। अतः सुबह मैंने एक आदमी को······· तहसील के कस्बे में भेजा। वहाँ के डाकखाने से ट्रंककोल करवाया। यद्यपि हमें उनके नाम-पते ज्ञात नहीं थे। फिर भी हम इतना तो जानते थे कि ये लड़कियाँ पाटीदार की हैं और पाटीदार स्वामीनारायण-सम्प्रदाय के सत्संगी हैं। इसलिए हमने ट्रंककोल स्वामीनारायण-मन्दिर में किया। ट्रंककोल मिलने के बाद लड़की के माता-पिता, सम्बन्धी, पुलिस और होमगार्ड के अगुआ वगैरह करीब ३० आदमी खंभात से हमारे गाँव में आये। उन्हें ऐसी आशा हुई कि शायद लड़कियाँ मिल गई हो। इसलिए उन्होंने आते ही पूछा—"क्या लड़कियाँ हाथ आ गई हैं?" मैंने कहा—"लड़कियाँ हमारे गाँव से हो कर गई हैं और ले जाने वाले·······गाँव के एक वाघरी पर हमें पक्का शक है। हमने इसकी जांच शुरू कर दी है। आप इधर-उधर उलटे दौरे करके हैरान न हों; इसलिए हमने आपको बुलाया है।" बेचारे कन्या के माता-पिता ने तीन-चार दिन से कुछ भी नहीं खाया था। उन्हें हमने हिम्मत बंधाई और रात को भोजन करवा कर सुलाया।

सवेरे उठ कर वे सब विचार करने लगे कि "अब क्या करना चाहिये?" मैंने कहा—"हमने इसकी खोज करने के लिए यहाँ से लींबड़ी तक घोड़े भेजे हैं। उन्हें आने दें। फिर हम विचार करेंगे।" घोड़े लगभग १० बजे वापिस लौटे। पर·······वाघरी का तो कहीं भी पता नहीं लगा।

इसके बाद हमने एक नया प्रोग्राम सोचा कि वे जो ३० आदमी खंभात से आए थे, उनमें से १० आदमी यहाँ रहें, बाकी के खंभात वापिस लौट जांय। मैंने कहा—"आप लोग इस प्रदेश से बिलकुल अपरिचित हैं। इसलिए हमारे गाँव के आदमियों के साथ आपके दो-दो आदमी रहें। इस तरह १५ आदमी हमारे गाँव के और १० आदमी खंभात के; यों हम २५ आदमी मिल कर मेल में बैठ कर..........गए। वहाँ से एक टोली राणपुरविभाग में, दूसरी धोलेरा विभाग में तीसरी वेलावदर और चौथी भड़ियाद (जहाँ पू० महाराजश्री का चौमासा था, वहाँ) भेजी। भालप्रदेश के अनेक गाँवों में यह खबर पहुँच गई। इसलिए प्रायः अनेक गांव सावधान होकर खोज में लग गए। सब रेल्वे स्टेशनों के नाके रोक लिये थे। किसी ने पैंदल, किसी ने घोड़े पर और कई लोगों ने मोटरों और अन्य सवारियों पर चढ़ कर बहुत-से गाँवों में चक्कर लगाए।

अन्त में वेलावदर जो टोली भेजी गई थी, उसमें होमगार्ड्स, पुलिस, दो हमारे गाँव के भाई और दो खंभात वाले थे; वे सब ट्रक में बैठ कर वेलावदर आए। वे लोग ट्रक ले कर कुछ दूर खड़े रहे और एक आदमी..........वाघरी के घर पता लगाने गया। रास्ते में एक कुम्हार का लड़का मिला। उससे वाघरी का घर पूछने पर उसने पहले तो उलटा-सीधा उत्तर दिया। गाँव में पूछने पर पता लगा कि जबर्दस्त आदमी होने से कोई उसके सामने बोल नहीं सकता। यह भी मालूम हुआ कि एक कुम्हार की लड़की को ले जाने के लिए उसकी आँखों में उसने आक का दूध आंज दिया था, जिससे वह अंधी हो गई थी। फिर तो कुम्हार के लड़के ने दूर से ही उसका घर बता दिया। घर में पूछने पर पता लगा कि.......वाघरी की आँखें दुखनी आजाने से वह इस समय घर में ही है। उसके घर में जाने वाले ने यह कह कर उसे बाहर बुलाया कि "हमें घेला सोमनाथ के मेले में जाना है; इसलिए रास्ता बता दो।' इस प्रकार उसे बाहर बुला कर जहाँ ट्रक खड़ा था, वहाँ ले आए। पुलिस को देख कर वह घबराया। परन्तु वहीं उसे पकड़ कर ट्रक में बिठा कर बोटाद हो कर धंधुका लाए। हम उस रात को भड़ियाद थे। सुबह हम भी वहां से धँधुका आए। मैंने....भाई वाघरी को पहिचान लिया। उससे बात की। फिर मैंने उससे पूछा—अब यह बात कह कि वे लड़कियाँ कहाँ हैं? सच-सच बात बता।.......भाई वाघरी ने कहा—"लड़कियाँ तो दिल्ली पहुँच गई हैं।" एक तो वाघरी, फिर ऐसा

भयंकर अपराधी; इसलिए उसकी वात पर विश्वास कैसे हो सकता था ? परन्तु उस समय धंधुका रेल्वेस्टेशन पर कई आदमी थे, उनसे वाघरी के द्वारा वताए हुए निशानों का समर्थन मिला। मैंने उसे भलीभाँति तपा कर देखा। उसने कहा—"अव तो हमें जल्दी से जल्दी दिल्ली पहुँच जाना चाहिए, नहीं तो लड़कियाँ हाथ नहीं आएँगी।"

मैंने कहा—"सच सच वता ! सारी वातें खोल कर कहा"—वाघरी ने जवाव दिया—देखो काका ! खंभात में पूर्व दिशा में गवारा दरवाजे के वाहर खीजीपापुरा में इन कन्याओं के माता-पिता रहते थे । हम वहाँ गए। मेरे साथ मेरी पत्नी थी। ये लड़कियाँ वर्तन मांजने के लिए रेत लाने अपने मकान के पास स्थित सड़क पर गयीं। पास ही एक तालाव है। इन लड़कियों को मेरी पत्नी ने देखा और इन्हें इमली खाने को देने लगी। लड़कियों ने इमली ले ली। मेरी पत्नी ने उन्हें कहा—'मेरे साथ चलोगी तो तुम्हें और इमली दूंगी।" यों कह कर लड़कियों को उसने फुसलाई ; लड़कियाँ रेत लाने के वर्तन घर रख हर मेरी पत्नी के साथ चल पड़ीं। इन तीनों लड़कियों में एक ११ साल की, दूसरी १० साल की और तीसरी लगभग ७ साल की है। मेरी पत्नी इन तीनों लड़कियों को साथ ले कर खंभात के सदर वाजार से हो कर उत्तर दिशा से खंभात से वाहर निकली और शाम होने के वाद रात को हम वहाँ से चल पड़े। लगभग ५ कोस चले होंगे कि लड़कियाँ थक गईं। मेरी पत्नी ने उन्हें डर दिखाया। इससे वड़ी मुश्किल से चलीं। फिर रोने लगीं। इसलिए हम थोड़ा-सा विश्राम लेने जंगल में रुके। वहाँ से सवेरे उठ कर हम चलने लगे। मेरी पत्नी ने उन्हें डर दिखाया कि रोना नहीं। कोई तुमसे पूछे तो कहना—"यह मेरी मौसी है।" यों चलते-चलते हमने सावरमती नदी पार की····पर हो कर हम जवारज की सीमा पर आए। यहाँ दोपहर को रोटी वनाने के लिए हम रुके। मैं गाँव में साग लेने गया। वहाँ मुझे····भाई मिले। उन्होंने मुझे पहिचान लिया। मैं प्याज लेकर आया। मेरी पत्नी रोटी वनाने लगी। इतने में एक भारवाड़ की कन्या आई। उसने पूछा—'ये लड़कियाँ किसकी हैं ?" हमने कहा—"हमारी हैं। "वह भरवाड़ कन्या चली गई, तव हमें विचार आया कि कहीं यह जा कर कह देगी तो हम पकड़े जायेंगे। इसलिए हम वहाँ से फौरन रवाना हुए। मेरे साथ में मेरा साढु था। इस प्रकार

तीन हम और तीन लड़कियाँ सभी वहाँ से हड़ाला आए। रात को शटल में बैठकर हम धंधुका पहुँचे। सवेरे वहाँ से बोटाद पहुँचे। मेरी आँखें दुखनी आ गई, इसलिए में वेलावदर आया और मेरी पत्नी मेहसाणा हो कर दिल्ली गई है। अब यदि वह किसी को लड़कियाँ बेच देगी तो फिर वे हमारे हाथ नहीं आएँगी। अतः हमें शीघ्र से शीघ्र शुरू दिल्ली पहुँचना चाहिए। मैं यह बातें बिलकुल सच-सच कह रहा हूँ। हम वाघरी लोग हमेशा से लड़कियाँ इस प्रकार से उड़ाकर ले जाते हैं और वेश्याओं को बेचने का धंधा करते हैं। हमने वहाँ एक·······नामक दलाल रख छोड़ा है। वह मालदार है। मोटर रखता है। अगर कन्याएँ उसके हाथ में चली गयीं तो फिर हाथ नहीं आएँगी। अतः अब जल्दी करिये।

मुझे·······वाघरी की बातों में सत्यता लगी। मैंने पुलिस वालों से इसे ले कर दिल्ली जाने का कहा तो उन्होंने कहा—"हमें पहले इसे खंभात ले जाकर फौजदार के सामने पेश करना है। फिर वहाँ से दिल्ली जाएँगे।" मैंने कहा—"आप यहाँ मामलतदार के सामने इसे पेश करके दिल्ली ले जा सकते हैं। क्योंकि फिर समय अधिक चला जायगा और शायद कन्याएँ बिक जाएँगी तो हाथ नहीं लगेगीं।" परन्तु पुलिस वाले नहीं माने। इसलिए हम पुलिस को इस वाघरी भाई के बारे में उचित हिदायत दे कर भड़ियाद पू० मुनिश्री के पास आए। मुनिश्री से हमने सारा हाल कहा। मुनिश्री को इसमें शंका थी, इसलिए कहा—"यह बात सच निकले तो अच्छा। अब क्या होता है, यही देखना है।" मुनिश्री ने एक बात की चेतावनी दी कि—"भविष्य में ऐसे मौकों पर जनता के सहयोग की अवज्ञा होने जैसा कदम नहीं उठाना। जनता के सहयोग के बिना ऐसा भगीरथ काम कोई भी सरकार या सरकारी अधिकारी, पुलिस वगैरह अकेले नहीं कर सकते। जनता के शुभ प्रयत्नों को मुख्यता दे कर सरकारी या अर्धसरकारी सत्ताधारियों को अपना कर्तव्य अदा करने का मौका बाद में देना चाहिये।" यद्यपि मुझ पर भी खंभात के पुलिस या मुख्य होम-गार्ड्स की छाप अच्छी नहीं पड़ी थी और अब तो ऐसा अनुभव होता जा रहा है कि बहुत-सी दफा पुलिस या सरकारी अधिकारी ऐसे जनहित के कामों में विघ्नरूप साबित होते हैं।

अब वे लोग खंभात जा कर इस मामले को मजिस्ट्रेट के सामने पेश करके दिल्ली रवाना हुए। साथ में ४-५ भाई गए। वे रात को तीन बजे दिल्ली पहुँचे। दिल्ली में ऐसा हुआ कि ......वाघरी का दलाल तीनों में से एक लड़की को वेश्याओं के यहाँ बेचने ले गया। छोटी लड़की की कीमत कम ही मिलती है; यों मान कर वह क्रमशः एक के बाद दूसरी और दूसरी के बाद तीसरी वेश्या के यहाँ बेचने ले गया। एक वेश्या ने उसकी कीमत कुछ अधिक बताई। इसलिए पहले उसे बेचने की बात जिस वेश्या के साथ हुई, उसने ईर्ष्यावश इस वेश्या के यहां अपहृत कन्या की जानकारी पुलिस को दे दी। अतः पुलिस.......दलाल के यहाँ तलाश करने पहुँची। परन्तु दलाल ने पहले से ही वह कन्या दूसरी जगह पहुँचा दी थी। स्वयं भी फरार हो गया था। फौजदार लड़की की तलाश करते-करते.......वाघरी की पत्नी जहाँ ठहरी हुई थी, उस झौंपड़े पर पहुँचा। उसने यहाँ तीन कन्याओं को देख कर वाघरन से पूछा—"ये कन्याएँ किसकी हैं?" उसने कहा—"एक मेरी बहन की है, दो मेरी हैं।" "तेरा पति कहाँ है?" यों पूछने पर उसने जवाब दिया —"वह मर गया है।" उस समय तो उसने लड़कियों को दूसरे कपड़े पहना दिये थे। इसलिए फौजदार तलाश करके चला गया। रात को फौजदार ने सोचा—'वे दो लड़कियाँ तो समान उम्र की हैं, इसलिए उस औरत की कैसे हो सकती हैं? अतः फिर तलाश करनी चाहिए।" फौजदार सुबह उठा और फिर वाघरन के यहाँ पहुँच कर जांच करनी शुरू की। फौजदार ने उससे पूछा—"ये लड़कियाँ तेरी कहां से आयीं? ये दोनों तो समान उम्र की हैं।" वाघरन ने कहा—"हाँ, ये दोनों मेरी ही लड़कियाँ हैं। जोड़े से पैदा हुई हैं तब फौजदार ने बड़ी लड़की से पूछा—"सच-सच बता! यह तेरी कौन होती है?" उसने कहा—"यह मेरी मौसी है।" लड़की के इस उत्तर से फौजदार को अधिक शंका हुई। उसने और गहराई से छानबीन की। लड़कियाँ बोलीं हमें कुछ भी मालूम नहीं है।' इस पर फौजदार ने तीनों कन्याओं को अपने कब्जे में लीं और उस वाघरन को गिरफ्तार की। तीनों लड़कियों को वहाँ की एक महिलासंस्था में रखीं और वाघरन को कैद में डाली।

इस ओर हम.......वाघरी को ले कर दिल्ली पहुँचे। हमें कन्याओं के

मिलने की और उन्हें महिलासंस्था में रखने की खवर मिली। ये लोग जव ४ वजे पुलिस-चौकी पर गए तो वहाँ पर भी पक्की खवर मिली। लड़कियों के कुटुम्बीजन, जो दिल्ली गए थे, वे लड़कियों से मिलने को अधीर हो रहे थे। अतः वे उस महिला संस्था में पहुँचे। वहाँ की व्यवस्थापिका वहन ने उन्हें वे तीनों लड़कियां वताई। पहले तो लड़कियां अपने कुटुम्बीजनों को पहिचान न सकीं; परन्तु वाद में जव वे पहिचान गई तो रोने लगीं। लड़कियां अपने कुटुम्बीजनों से मिल कर संतुष्ट हुईं। वहाँ से ये लोग पुलिस थाने में गए और सुवह फौजदार को साथ ले कर उन तीनों लड़कियों को महिलासंस्था से लाए। वाघरन ने अपना नाम दूसरा लिखाया था, इसलिए""वाघरी ने अपनी पत्नी का जो असली नाम वताया था, वह मिला नहीं। इसलिए वाघरन को सौंपने में कुछ गड़वड़झाला और देर हुई। अन्त में, वाघरन, ""वाघरी और तीनों लड़कियों को ले कर हम वहाँ से वापिस खंभात आए। लड़कियाँ अपने माता-पिता से मिल कर वहुत खुश हुईं।

खंभात के मजिस्ट्रेट ने इन दोनों वाघरी-वाघरन पर मुकद्दमा चलाया; और दोनों को दो-दो साल की सजा दी। वाद में ऐसा भी पता लगा कि दोनों में से एक की सजा माफ हो गई।

इसके वाद इन तीनों लड़कियों के माता-पिता पू० महाराजश्री के दर्शनार्थ आए और वहुत ही आभार प्रगट किया, अत्यन्त शुभभावना वताई तथा भालप्रदेश के भाइयों को कन्याओं की खोज के हेतु अथक पुरुषार्थ करने के लिए धन्यवाद दिया एवं सवको खंभात आने का आमन्त्रण दिया। ...... भाई सहित हम १५ व्यक्ति यहाँ से खंभात गए। वहाँ उन्होंने एक भव्य जलसा किया। एक वड़ी आमसभा का आयोजन किया। उसमें वहां के नागरिकों में अग्रगण्य तथा इन लड़कियों के अभिभावक आदि वोले। इस भगीरथ कार्य में जिन-जिनका उन्हें निःस्वार्थ सहकार मिला तथा जिन-जिनने जद्दो-जहद की, उन सवका उन्होंने आभार माना। मुझ-से एक तुच्छ व्यक्ति को इस कार्य के वदले उन्होंने मानपत्र अर्पित किया। मैंने उस सभा में कहा— "मैं तो गाँव का एक साधारण नागरिक हूँ। पू० मुनिश्री संतवालजी महाराज की कृपा से भाल जैसे पेय-जलहीन प्रदेश में हमें मानवता के वोधपाठ मिले।

उन्हीं पाठों में से एक पाठ पक्का करने का हमने प्रयत्न किया है। केवल अपना कर्त्तव्य अदा करने के सिवाय हमने इसमें कुछ अधिक नहीं किया है। इस बात का हमें संतोष है कि हम इस कर्तव्यपालन में सफल हो सके। मेरे साथ इस कार्य में अनेक भाइयों ने अपना समय और शक्ति दी है; इसलिए इन सबका योगदान भी कम नहीं है। प्रभुकृपा से और सबके सहयोग से यह काम भलीभांति सम्पन्न हो गया। फिर भी आपने मेरे सरीखे तुच्छ व्यक्ति को मानपत्र दिया, यह मेरी अपनी योग्यता से कुछ अधिक ही है। यद्यपि मैं आपकी भावना की कद्र करता हूँ और इस मानपत्र के साथ मुझे पर जो विशेष जिम्मेवारी आती है, उसे निभाने की शक्ति प्रभु मुझे दें और आप सबका सहयोग भविष्य में भी ऐसे मानवता के कार्य में मिलता रहे, यही मेरी आप सबसे प्रार्थना है।"

इस प्रकार ये तीनों लड़कियाँ आधोगति में जाने से बचीं, इसका उनके अभिभावकों तथा दूसरे स्नेहीजनों एवं शुभचिन्तकों को कितना आनन्द हुआ होगा; यह तो उन सबके प्रफुल्ल हृदय ही बता रहे थे !

: ४६ :

'ये तो सच्चे का पक्ष लेते हैं !'

[वर्तमान लोकतंत्र के युग में जनता द्वारा जब शुद्धिप्रयोग किया जाता है, तब ऐसे शुद्धियज्ञ करने वालों में यदि जरा-सी भी अशुद्धि-किसी के प्रति अन्याय, पक्षपात आदि की-आ जाय तो ऐसे शुद्धियज्ञ का दूसरे पर प्रभाव नहीं पड़ सकता। परन्तु इस बात की चेतावनी कौन दे ? यह स्वाभाविक है कि शुद्धियज्ञ में अग्रस्थान प्राप्त होता के रूप में जो अपने अंहया दूषणों की आहुति देता है; वही शुद्धिनिष्ठ जनसेवक अगर सावधान न करे तो सचमुच शुद्धियज्ञ की नींव हिल उठती है या उस शुद्धि-यज्ञ पर लोकश्रद्धा नहीं जमती। यह कचास शोषक और शोषित दोनों को

चुभती है। शुद्धिप्रयोग में सम्मिलित होने वाले एक किसान की कचास को शुद्धिप्रयोगयज्ञ के होता के रूप में एक जनसेवक ने कैसे दूर की और उसे शुद्ध बना कर शुद्धिप्रयोग पर लोकश्रद्धा का कलश कैसे चढ़ाया ?, इस बात की साक्षी नीचे की घटना दे रही है—]

"इस वाड़ी पार तुम्हारा अधिकार नहीं है। यह सारी जमीन मेरी है इसलिए इस वाड़ी में तुम्हें पैर नहीं रखना है।" इस आशय की बात एक पटेल ने एक·······नाई से कही।

बात यों हुई कि शुद्धिप्रयोग के समय सरकार ने सामने चला कर स्वेच्छा से स्थिर रहे हुए किसानों को बुला कर जिस-जिसके खाते में जितनी जमीन थी, वह सब उनके नाम के पट्टे में उनके खाते में दर्ज कर दी। परन्तु ·······पटेल की २०बीघा जमीन के नम्बर में एक हिस्सेदार के रूप में·· ····· नाई की भी ६ बीघा जमीन थी। सरकार ने बीस बीघे की सारी जमीन उस नंबर के अनुसार····पटेल के खाते में दर्ज करा दी। इस कारण····पटेल की नीयत बिगड़ी और उसने·······नाई को उपर्युक्त वचन कहे।

ये वचन सुन कर·······नाई को बहुत ही ठेस लगी। उसे विचार आया कि इस·······पटेल ने मेरी ६ बीघे की वाड़ी हजम करने के लिए नीयत बिगाड़ी है। इसलिए उसने·······गाँव के लोगों के सामने यह बात चलाई। धीरे-धीरे मेरे कानों में भी यह बात पड़ी। मैंने इसकी जांच की और······· पटेल से पूछा कि 'इसमें सच्चाई क्या है ?' तो वह यही कहने लगा कि असल में यह जमीन मूल में मेरी ही थी। पर पिछले एक-दो साल से मन्दिर के हिसाब-किताब रखने वालों ने ····नाई को दे दी थी।" अमुक समय तक तो मुझे···· पटेल की बात सच्ची लगी। फिर भी जांच तो जारी ही रखी। मैंने खेत-मजदूरों से पूछा—'यह वाड़ी किसकी है ?' तब उन्होंने कहा— "पिछले ८-१० वर्षों से··· ····नाई इस खेत को जोतता है। हमने कई बार इस नाई के खेत में काम किया है।" यह सुन कर मुझे लगा कि 'पटेल झूठ बोलता है।' अतः दुबारा मैं पटेल के पास गया और उससे पूछा— "भाई ! आप सच्ची बात कहो मुझे·······नाई की बात सच्ची लगती है।" परन्तु पटेल तो अपनी ही बात पर अड़ा रहा।

अन्त में, मुझे पक्का विश्वास हो गया कि'....पटेल झूठ कह रहा है ....नाई की बात सही है।' इसलिए मैंने....पटेल से कहा—"आप जहाँ तक सच्ची बात नहीं कहेंगे, वहाँ तक तुम्हारे लिए मुझे संतोष नहीं होगा। मैं तुम्हारे हृदय को जगाने के लिए आज से ही उपवास करूंगा।" यों कह कर मैंने उपवास शुरू किया। उसके बाद मुझे क्या करना? यह भविष्य में सोचने पर रखा।

उपवास के पहले ही दिन शाम को.......पटेल मेरे पास आए और कहने लगे—"भाई! आप पारणा कर लें। मैं आपको सच्ची बात कह दूंगा।" मैंने कहा—"भाई! अभी ही सच कह दो न! आप सच-सच कह देंगे, उसके बाद ही मैं पारणा करूंगा।" इस पर.......पटेल भाई ने कहा—"तो लो, मैं सच्ची बात कह देता हूँ कि यह जमीन मेरी नहीं है,.......नाई की ही है। मैं इसी समय उसे वह सौंप देता हूँ और उससे माफी भी मांग लेता हूँ।

यह सुन कर मुझे प्रसन्नता हुई। मैंने खुशी से पारणा किया। इसके बाद.......पटेल भाई तथा अन्य ५-७ भाइयों को ले कर हम सब नाई के यहाँ पहुँचे। उसे.......भाई पटेल ने कहा—"भाई! मैंने तुम्हारी ६ बीघा जमीन हड़प जाने की नीयत की थी, वह मेरी भूल हुई। चलो, मैं तुम्हें वह जमीन तुम्हारे खाते में दर्ज करवा देता हूँ। तुम्हारे खेत का बाजरा तुम खुशी से काट लेना। मुझे वह नहीं चाहिए। मैंने तुम्हें हैरान किये, उसके लिए मुझे अफसोस है, मुझे माफ करना।"

यह सुन कर.......नाई ने खुशी प्रगट करते हुए कहा—"भाई! आपने मुझे अपना भाई मान कर मेरे हक की जमीन दी; उसके लिए प्रभु से मेरी प्रार्थना है कि आपका भला हो! प्रभु की अपार दया है कि आप में सद्‌बुद्धि जगी। मैंने आपको बदनाम करने का प्रयत्न किया, उसके लिए क्षमा चाहता हूँ। मुझे तो इस बात का अतीव संतोष हुआ कि यह पटेल सच बोला और उसने नाई को उसके हक की जमीन सौंप दी।

गाँव में इस बात का अच्छा प्रभाव पड़ा। सभी लोग कहने लगे—"ये

शुद्धिप्रयोग वाले न्यायी का ही पल्ला पकड़ते हैं। इनके मन में पक्षपात या द्वेष नहीं है। ये तो सच्चे का ही पक्ष लेते हैं।"

सचमुच, 'सांच को आंच नहीं' यह कहावत यहाँ चरितार्थ हुई।

: ४७ :

हमारी भैंसे......भरवाड़ चुरा ले गया है !

[गाँव समाजनिर्माण का केन्द्रबिन्दु है। परन्तु जब तक गांव में प्रविष्ट अनिष्टों को दूर न किया जाय; तब तक वह इसके योग्य नहीं बन सकता। गाँव इसके लायक तभी बन सकता है, जब समाजसेवक गाँव के हर एक प्रश्न को सत्य, प्रेम और न्याय की दृष्टि से हल करें और उसकी शुद्धि का सतत प्रयास करें। यदि गांव के अमुक प्रश्नों की उपेक्षा की जाय तो गांव के लोगों का नैतिक दिशा में सही विकास नहीं हो सकता। किसान और गोपालक ये दो गांव के मुख्य अंग हैं। यदि ये दोनों सहकारपूर्वक न जीएँ तो ग्रामजीवन संकट में पड़ जाने का खतरा है। नीचे की घटना भैंसों की चोरी की है, जिसकी शंका एक भरवाड़ (गोपालक) पर थी, उसे एक समाजसेवक ने मिटाई और किसानों को संतुष्ट किया। यद्यपि इस तरीके से सत्य सिद्ध करके संतोष देने की बात में समाजसेवक का विश्वास नहीं था, क्योंकि ऐसे तरीके से अन्धविश्वास का पोषण होता है। यह रास्ता ठीक नहीं, फिर भी किसानों को इससे संतोष हुआ, इसलिए उन्होंने आपत्ति नहीं उठाई।]

"हमारी भैंसे हमारे गाँव का.......भरवाड़ उड़ा ले गया है; ऐसा हमें शक है। अतः उसकी जांच करा कर हमें अपनी भैंसें वापिस मिल जांय, ऐसा प्रबन्ध करा दें।" उपर्युक्त आशय का एक प्रार्थनापत्र पू० मुनिश्री संतबालजी महाराज की सेवा में.......गाँव के किसानों ने भेजा।

घटना इस प्रकार है—"········गाँव से किसानों की ५-६ भैंसे चुरा कर कोई ले गया। इसलिए उन्होंने उसी गांव के·······भरवाड़ का नाम लिया कि फलां भरवाड़ हमारी भैंसे उड़ा ले गया है। उन्होंने इस बारे में पू० महाराजश्री की सेवा में उपर्युक्त अर्जी लिख कर भेजी। पू० महाराजश्री ने वह पत्र मुझे भेजा। मैंने उन्हें लिखा कि मैं पूरी जांच करके सही हल निकालने का प्रयत्न करूंगा।"

मैंने इस प्रश्न की बारीकी से जाँच शुरू की। जिस भरवाड़ पर भैंसों की चोरी का शक था, उससे मैंने पूछा—"बोलो, ये किसान जो यह बात कहते हैं, वह सच्ची है ? तुम इसे बारे में क्या कहना चाहते हो ?"

तब उसने कहा—"मैं इस विषय में कुछ नहीं जानता।"

इसके बाद मैंने सभी को एक जगह इकट्ठे करके इस बारे में जांचपड़ताल करने का सोचा; जिससे इस प्रश्न का जल्दी से जल्दी निचोड़ निकाला जा सके। इसलिए···········भरवाड़ और गोपालक कार्यकर्ता तथा जिनकी भैंसें चुराई गई थीं, उन किसानों को एक कस्बे में एकत्रित किए और इस बारे में गहराई से चर्चा-विचारणा की।

किसान यही कह रहे थे कि ············'भरवाड़ ही भैंसे चुरा ले गया है'; जबकि वह भरवाड़ कहता था कि "मैं इस विषय में कुछ जानता ही नहीं।"

इस सम्बन्ध में विचारविमर्श चल रहा था, तभी किसानों के एक अगुआ भाई बोल उठे—"यदि यह भाई ठाकुरद्वारे पर आकर उस मन्दिर के ठाकुरजी के घोड़े उठा ले तो हम उसे सच्चा मान लेंगे। अन्यथा वहाँ तक हमारे मन में से वहम मिटेगा नहीं।" इस पर से भरवाड़ ने कहा—"आप जहाँ कहें, उसी जगह मैं आने व घोड़े उठाने को तैयार हूं।"

इसके पश्चात् हमने किसानों से कहा कि "इस तरीके से सत्य सिद्ध करना हमें उचित नहीं लगता; क्योंकि इसके पीछे दंभ चलने का खतरा हैं। तथापि जब आप लोग स्वयं कहते हैं और इससे आपके मन को संतोष हो जायगा तो हम आपके संतोष के लिए इस बात को स्वीकार करते हैं। परन्तु इस भरवाड़ ने घोड़े उठा लिए और सच्चा सिद्ध हुआ तो फिर आप क्या करेंगे ?" इस पर उन्होंने कहा—"आप जो कहेंगे, उसे हम स्वीकार करेंगे।"

इसके वाद सवने यह तय किया कि अगर यह भरवाड़ सच्चा सिद्ध हो तो जो आरोप भरवाड़ पर किसानों ने लगाया था, उस वारे में पू० महाराजश्री जो न्याय दें, वह उन्हें कवूल करना होगा।"

जव भरवाड़ से इन किसानों को संतुष्ट करने की वात कही तो वह मन्दिर के घोड़े उठाने को तैयार हो गया। किसान भी वसस्टैंड तक सामने आए। जव वस रवाना होने लगी, तव किसानों ने कहा—"अव हमारा वहम भरवाड़ पर नहीं हैं। भरवाड़ सच्चा है।"

इस प्रकार किसानों को संतोष हुआ। यह काम शान्ति से निपट गया।

: ४८ :

"मंडल जो सच्चा न्याय दे, वही लेना है !"

[किसानों और गोपालकों के वीच जो झगड़े होते हैं, वे प्रायः खेतों में चराने के लिए पशु घुसाने के प्रश्न पर होते हैं। इसका सच्चा हल दोनों के संगठन (मंडल) हैं। दोनों मंडल दोनों के हितों को उचित न्याय देने की पूरी सावधानी रखते हैं जिससे दोनों पक्षों को संतोष हो जाता है। परन्तु अफसोस यह है कि गोपालक और किसान पहले अच्छी तरह लड़झगड़ कर तव मंडल की शरण में आते हैं। पहले से ही अगर दोनों आपस में समाधान कर लें या एक दूसरे का दिल दुःखित हो, ऐसी गलतियाँ न करने की सावधानी रखें तो तुरन्त दोनों का समाधान हो जाय और मंडलों का काम भी आसान हो जाय। परन्तु देर से ही सही, ऐसे प्रश्न अगर मंडल के सामने रखे जांय और मंडल द्वारा दिये गए न्याय का स्वीकार कर लें तो भी गनीमत है। नीचे की घटना में मंडल के पास आए हुए प्रश्न का निर्णय दे कर मंडल ने अपनी उपयोगिता सिद्ध की है।]

"गायों को हांक रहे हो या क्या कर रहे हो ? यह तुम्हारे वाप का माल नहीं है, जिसे यों ही मुफ्त में पशुओं को पराये खेत में घुसा कर चराने जा रहे हो ! तुम यहाँ मेहनत करने नहीं आए।" यों एक किसान ने अपने खेत की सीमा से गुजरती हुई और घास चरती हुई गायों को देख कर उन गोपालकों से कहा।

वात इस प्रकार थी कि·······गाँव के एक किसान ने, जो अपने खेत में वैलों से हल चला रहा था; अपने वैलों के लिए उसने चारे का एक गट्ठड़ अपने खेत के किनारे रखा था। कुछ ही देर में ये ग्वाले अपनी गायों को लेकर हांकते-हांकते इस खेत के किनारे आगए। इसलिए किसान ने उसे वैसा न करने और गायों को आगे हांक ले जाने को कहा। पर ग्वालों को यह ठीक न लगा। इसलिए उस किसान ने ज़रा डांटडपट करते हुए पूर्वोक्त उद्गार निकाले।

परन्तु गोपालकों ने गुस्से में आगववूले हो कर लट्ठ उठाया और लट्ठ से दो-तीन प्रहार किसान पर किए और उससे नीचे गिरा दिया। किसान जोर-जोर से चिल्लाने लगा। इसलिए गोपालक गायें ले कर भागे और उन्हें अपने गाँव में हांक ले गए। घास का गट्ठड़ तो गायें खा ही गई थीं।

किसान की चिल्लाने की आवाज सुन कर ही कुछ ही दूरी पर हल चलाता हुआ दूसरा एक किसान वहाँ आ पहुँचा; और हल पर विठा कर उस किसान को गाँव में ले गया।

इसके वाद किसान के अभिभावकों को बहुत-से लोगों ने राय दी कि तुम इसकी रिपोर्ट लिखाओ, जिससे भरवाड़ों (गोपालकों) की अक्ल ठिकाने आ जाय।" परन्तु ये भाई किसानमंडल के प्रति वफादार थे। इसलिए उन्होंने कहा—"पू० संतवालजी महाराज की प्रेरणा से चलने वाला हमारा किसान-मंडल है। हमें मंडल जो सच्चा न्याय दे, वही लेना है। दूसरी जगह कहीं हमें रिपोर्ट नहीं करनी है।

जिसे मार पड़ी थी, उस किसान और उसके अभिभावकों ने यह प्रश्न किसान-मंडल के सामने रखा और योग्य समाधान करने के लिए अर्जी लिखी। इसलिए·······कस्वे में किसानों और·······गाँव के गोपालकों को मुख्य

गोपालक कार्यकर्ता ने इस प्रश्न के सम्बन्ध में वार्तालाप करने के लिए बुलाया मैं भी वहाँ पहुँच गया। सबने मिल कर उचित समाधान कराने का सोचा। पहले तो खूब ही रस्साकस्सी हुई। परन्तु अन्त में दोनों पक्षों ने मध्यस्थप्रथा द्वारा निर्णय का स्वीकार किया। दोनों पक्षों के दो-दो मध्यस्थ (पंच) नियुक्त किये गए और सरपंच के रूप में मेरा नाम दिया गया। इस प्रकार प्रश्न पर योग्य विचारविनिमय करके फैसला दिया कि—"सचमुच किसान भाई को गोपालकों ने मारा-पीटा, यह बहुत बुरा किया है। इसलिए गोपालक अपनी भूल का स्वीकार करें, किसान से क्षमा मांगें और.......गाँव के धर्मादा काम में १९ रु० दें।

गोपालकों ने यह फैसला मान लिया और किसान एवं गोपालक कड़वाहट भूल कर एक दूसरे से मिले-जुले। एक दूसरे से प्रेम से मिले। अपनी भूल को इकरार करके उसके लिए उन्होंने किसान से क्षमा मांगी और १९ रु०.... गाँव के पंच को दे दिये। उसके बाद सब प्रेम से विदा हुए।

: ४९ :

अन्त में सत्य प्रगट हो ही जायगा !

[प्राचीनकाल से निम्नवर्ग एवं गरीब लोगों पर जबर्दस्त और सत्ताधारी लोगों की ओर से अन्याय या शोषण होता रहा है। परन्तु जब से समाजसंस्कर्ता—श्रमण, ब्रह्मणवर्ग द्वारा इस ओर उपेक्षा की गई तब से इन दूषणों ने हद कर दी है। आम जनता राज्यकर्ता राजा की या विदेशी शासक की गुलामी की आदी होने के कारण ऐसे अन्यायों को चुपचाप सह लेती। वह दबी हुई होने के कारण ऐसे जबर्दस्त लोगों के सामने बोल भी नहीं सकती थी। कोई व्यक्ति साहस करके बोलता तो उसे भी दबाया और सताया जाता। इस दुःस्थिति से भारतीय जनता को बचाने के लिये महात्मा गाँधीजी ने भारतीयों के सहयोग से बहुत महंगा स्वराज्य प्राप्त कराया। इसके बावजूद आज भी भारतीय जनता गुलामी

की आदी तथा जवर्दस्त तत्वों द्वारा होने वाली अन्यायी वृत्ति से अभ्यस्त होने के कारण स्वराज्य के पहले जैसा ही व्यवहार चलाना चाहते हैं। परन्तु अब जागृत दृष्टि वाले श्रमण और नये ब्राह्मण (रचनात्मक कार्यकर्ता) ऐसे सरासर अन्याय को कैसे चलने दे सकते हैं? वल्कि भूल-चूक से कोई जवर्दस्त समझे जाने वाला मनुष्य निचले स्तर के मनुष्य पर अन्याय कर वैठे तो वे उसे उसकी भूल समझा कर और उसे स्वीकार करा कर उसका हृदय नम्र वना देते हैं। नीचे की घटना इसकी पूरी-तौर से गवाही देती है।]

"........माई-वाप! हम जैसे गरीव मनुष्यों की कौन सुने? हमारी भी कोई जिंदगी है! हमारे वालबच्चों पर चोरी का आरोप लगा कर गाँव के पगी और गरासदार (राजपूत) बापू (मुखियाजी) ने लट्ठी और थप्पड़ों की वर्षा वरसा दी है। आइए चलिए, आप स्वयं आँखों देख लें।" अपने आप्त-जनों के आगे जैसे फरियाद की जाती है, वैसे ही ......गाँव के वाघरी भाइयों ने फरियाद की। हम तुरंत गांव के सरपंच को ले कर वाघरी-वास में गए। सव वाघरी भाईवहन इकट्टे हो गए। मार खाने वाले लड़कों से हमने पूछा तो उन्होंने भी वैसा ही कहा।

यह निश्चित होने के वाद हम गरासदार (मुखियाजी) के पास पहुँचे। ये भाई वड़े प्रेम में विठाने और स्वागत करने लगे। हमने उन्हें तुरंत कहा—"स्वागत की वात पीछे होगी, पहले हम यह जानना चाहते हैं कि वाघरी के लड़कों मको ारने में आप थे? "उन्होंने कहा—"एक लड़के के मैंने थप्पड़ मारा था, यह वात सही है। पर उसने मेरा कल्याण कपास चुराया था। उसके वारे में पूछने पर उसने मुझे सीधे मुँह जवाव न दिया और अंटसंट वकने लगा। इस कारण ऐसा हुआ।"

हमने उनसे कहा—"चोरी का अपराध उन्होंने किया हो, यह तो आप अभी तक निश्चित रूप से वह नहीं सकते। पर मान लो, उन्होंने कपास चुराया हो तो भी क्या मारने का उपाय खराव नहीं है? समाज ने उनकी वुद्धि भले ही मैली मानी हो, परन्तु हमें तो उस माफ करने में मदद करनी चाहिए।"

यह सुन कर वे शर्मिदा हुए और भूल कवूल कर ली।

हमें इतनी जल्दी इस काम के निपटने की आशा नहीं थी। परन्तु प्रभु-कृपा से जल्दी ही काम निपट गया। इसके वाद हम पगी के पास गए। पगी से पूछा—"क्या तुम वाघरी के लड़कों को मारने में थे।" पगी कहने लगा—"मैंने किसी को मारा ही नहीं। अरे मार तो क्या, मैंने किसी को उलाहना तक भी नहीं दिया। मेरी गलती हो तो चाहे जितनी भारी सजा मैं भोगने को तैयार हूँ।', पगी की वाणी में सच्चाई तो नजर आ रही थी; फिर भी और अधिक प्रतीति करने के लिए हम उस गरासदार भाई मुखियाजी और पगी दोनों को ले कर फिर वाघरीवास में गये। गरसदार भाई ने वाघरियों के सामने भूल नम्रतापूर्वक स्वीकार की और सबके समक्ष माफी मांगी।

गरासदार भाई की नम्रता देख कर वाघरी खुश तो हुए, पर पगी के मामले में वगलें झाँकने लगे। हमने फिर सवसे पूछा—"कहो, सत्य वात क्या है? यह पगीभाई मारपीट करने में शामिल थे?" परन्तु हुआ ऐसा कि अव वे पगी के सिवाय दूसरे किसी का नाम ही नहीं लेते थे। या तो पगी के साथ किसी अदावत का वदला लेने के लिए वे ऐसा करते हों या मुखियाजी की आवरू समाज में वचा लेते की नीयत से ऐसा करते हों। चाहे जो कारण हो।

अन्तत: पगी ने सवको ललकार कर कहा—"भाइयो! अन्त में सत्य होगा, वह प्रगट हो कर रहेगा। सच-सच कहो!"

यह सुन कर वाघरी कुछ भी न वोले। नीचा मुँह करके चुपचाप खड़े रहे। हमें लगा कि ये सव लोग पगी का नाम झूठा लेते मालूम होते हैं। पूछताछ से अन्त में हमें पक्का विश्वास हो गया कि 'पगी ने नहीं, मुखियाजी ने उन्हें मारा है।" इसके वार शाम को हम मुखियाजी के घर पर गए। पर वे कहीं दूसरे गाँव गये हुए थे। हमें शीघ्र ही दूसरे गाँव जाना था। इसलिए हम उपालम्भ का पत्र लिख कर उनके घर में दे कर वहाँ से चल पड़े।

वाद में हमें पता लगा कि मुखियाजी ने सरपंच के सामने पश्चात्तापपूर्वक यह वात कवूल की है कि "मैंने गुस्से में लट्ठी के ४ प्रहार किये थे।" फिर तो पगी का झूठा नाम लेने के लिए वाघरियों को भी वड़ा पछतावा

हुआ। जब हम दुवारा''''जांव में गए, तब उन्होंने अपनी भूल का जाहिरातौर पर इकरार किया।

इससे सब संतोष का आनन्द महसूस कर रहे थे।

: ५० :

किसान की पुकार

[ग्राम के किसी भी व्यक्ति पर प्राचीनकाल में किसी की ओर से अन्याय-अत्याचार होता तो वह गांव के स्वामी—ठाकुर या राजा के पास जा कर पुकार करता था। राजा या ठाकुर स्वयं न्यायी और सच्चे माने में क्षत्रिय होते तो वे उचित न्याय दिलवाते थे। मगर स्वयं अन्यायी और जुल्म करने वाले ठाकुर या राजा तो जबर्दस्त या अन्याय-कर्ता उद्दण्डतत्त्वों का ही पक्ष लेते थे। आज जबकि लोकराज्य आया है तो इस समय राजा या ठाकुर के अभाव में लोकसेवकों या जनता के ही संगठित मंडल के पास ही पुकार करना उचित है। तभी पुकार का सच्चा जवाब मिल सकता है, सच्चा न्याय मिल सकता है और पक्की जाँच हो सकती है। परन्तु लोक-सेवकों या लोकमंडलों को छोड़ कर कोई सरकार के पास सीधा ही जाय अथवा सरकारी अदालतों में जाय या किसी जबर्दस्त अधिकारी के पास जाय तो वहाँ सच्चा न्याय मिलना दुर्लभ है। यद्यपि सरकारी अदालतों वगैरह में जबर्दस्त या मालदार आदमी तो अपना काम कदाचित् बना सकता है, परन्तु गरीब आदमी को वकीलों और मुकद्दमे की पैरवी का अनापसनाप खर्च कहाँ से पोसाएगा ? नीचे की घटना एक गरीब किसान की पुकार सुन कर किसानमण्डल ने उसे सच्चा न्याय दिलाने की और दोनों पक्षों को संतुष्ट करने के सच्चे पुरुषार्थ की प्रतीति दिला रही है।]

"मेरी ८० बीघा जमीन इस''''भरवाड़ ने ले ली है और इस जमीन में हल जोत लिया है। जमीन हाथ से चली जाने के कारण मेरी खेती भी

चौपट हो गई है। इसलिए मैं बहुत दुःखी हूँ। मुझे अपनी जमीन भरवाड़ से दिला दें।" इस आशय की बात एक किसान ने मुझे कही; जब मैं ···गाँव में अचानक ही जा पहुँचा था। मैंने इस बात की जाँच की तो इस किसान की बात सही निकली। क्योंकि इस किसान के पास खेत के पट्टे की नकल भी बहुत वर्षों पहले की थी। भरवाड़ (गोपालक) ने तो झूठमूठ जबर्दस्ती से यह जमीन पचा ली थी। इसे जान कर मुझे बहुत दुःख हुआ। इस प्रश्न को मैंने ठीक तौर पर समझा, उसको ब्योरे वार नोट किया और मंडल के मंत्रीजी के सामने रखा। उन्होंने किसानमंडल के···तहसील के शाखाकार्यालय के कार्यकर्ता को तथा गोपालकमंडल के कार्यकर्ताओं को इस प्रश्न के लिए यथोचित करने का लिखा। सारी जांचपड़ताल के बाद दोनों मंडलों के कार्यकर्ताओं और मंत्रियों को ऐसा लगा कि "इस जमीन पर किसानों का ही अधिकार है। परन्तु भरवाड़ को पशु खड़े रखने की जगह की तंगी है। इसलिए १० बीघा जमीन पशुओं को खड़े रखने के लिए रख कर बाकी की जमीन यह भरवाड़ किसान को सौंप दे।" इन दोनों मंडलों के कार्यकर्ताओं ने उस भरवाड़ को इस बारे में समझाया। उसने अपनी गलती स्वीकार की और किसान को अपनी जमीन वापिस सौंप दी।

मुझे यह देख कर बहुत संतोष हुआ।

: ५१ :

आज गरीब की चिन्ता कौन करता है ?

[गाँव के लोगों में न्यायवृत्ति और न्याय की सूझबूझ अच्छी होती है। मगर उसके आसपास स्वार्थ, पक्षपात, अभिमान और मुलाहिजे का जाल बिछा हुआ है। इसके अलावा गाँव में शुद्ध न्याय में रोडे अटकाने वाले उद्दण्ड और जबर्दस्त लोगों का आवरण भी मजबूत होता है। इन जालों और आवरणों को चीरने के लिए शुद्ध न्यायनिष्ठा और समाजशुद्धि में जुटे हुए सेवकों के बेजोड़ पुरुषार्थ की जरूरत है। कई दफा तो

गाँव का आगुआपन करने वाले ही उन्हीं उद्दण्ड तत्वों का-सा काम करते रहते हैं। उनके अगल-बगल में गाँव के अधिकांश लोग होते हैं। और वे झूठी बातों में हां में हां मिलाया करते हैं। ऐसे समय गाँव के गरीब निर्दोष व्यक्ति को शुद्ध और सच्चा न्याय नहीं मिले तो आखिरकार गांव के लोगों के लिए ही वह बात आफत में डालने वाली होती है। नीचे की घटना गाँव के एक मुखियाजी के अन्याय से पीड़ित गरीब नाई को न्याय दिलाने के लिए समाजशुद्धि में संलग्न एक जनसेवक ने कितना पुरुषार्थ किया, उसकी साक्षी दे रही है।]

"अब तुझे यह घर खाली कर देना हैं। तूने जो गिरवी रखने के पैसे दिये थे, उन्हें मैं तुझे दे दूंगा। क्योंकि मैंने यह मकान मकानमालिक से लिया है। इसलिए तुझे यह मकान खाली कर देना पड़ेगा।" उपर्युक्त वाक्य गाँव के एक मुखियाजी ने एक नाई से कहे।

बात यह हुई कि वर्षों पहले यह घर एक गरीब नाई ने मकानमालिक से गिरवी रख लिया था। परन्तु बीच में वह बिलकुल गिर गया था, उस वक्त स्टेट ने उस घर का किरायानामा लिखा कर इस नाई को फिर से चिनवाने दिया। इस बात को लगभग ४० साल हो गए। नाई ने इस मकान पर काफी रुपये खर्च करके नया बनवा लिया था। यों तो यह मकान गोदाम जैसा था। परन्तु इसमें सब सामान नया डलवाया था। यह मकान गिरवी है, यह तो गांव के लोग जानते ही थे। परन्तु गरीब आदमी की चिन्ता कौन करे ? गाँव के एक धनाढ्य मुखियाजी की नियत बिगड़ी। 'यह मकान मौके का एक गोदाम बन जायगा, मेरे घर के पास भी है, यों सोच कर उन्होंने चुपके से वह गोदाम (मकान को गोदाम बता कर) पुराने मालिक से पैसे दे कर ले लिया और इसका दस्तावेज अपने नाम का करवा लिया। इस मकान का पुराना मालिक बाहर रहता था। इसलिए रुपयों के लोभ में आ कर ऐसा कर दिया। परन्तु मुखियाजी के इस कृत्य से गाँव के अनेक लोगों को दुःख हुआ। यद्यपि कानूनी दृष्टि से इस प्रकार दूसरे को मकान (आघाट) का मालिक बना कर दस्तावेज हो सकता है, तथापि ४० वर्ष से रहने वाले इस गरीब नाई से यह मकान खाली करवाया, यह मानवता के नाते उचित

नहीं था। मुखियाजी के रहने के लिए तो दूसरे घर थे। फिर भी उन्हें अपना सिक्का जमाना था। इसलिए यह घर उन्होंने रुपये दे कर लिया। उन्हें कोई इस घर में रहना थोड़े ही था। फिर भी उन्होंने नाई से उपर्युक्त वचन कह कर घर खाली कर देने को कहा।

ऐसा सुन कर नाई तथा उसके परिवार को वहुत ही दुःख हुआ। नाई ने कहा—"मुखियाजी ! मुझ गरीव आदमी का सहारा यही घर है। कृपा करके आप इसे खाली न कराएँ। आपने जितने रुपये दिये हों, उतने मैं आपको दे देता हूँ, और जो भी रियायत चाहें कर दूं, पर आप मुझ पर अन्याय न करें।"

परन्तु मुखियाजी टस से मस न हुए। वहुत कुछ समझाने के वाद भी जव मुखियाजी नहीं माने तो नाई ने कहा—"तो साहव ! मैं यह घर खाली नहीं कर सकता। हम घर के विना कहाँ रहें ?"

यद्यपि कानूनी दृष्टि से तो उसे घर खाली कर देना चाहिए था। परन्तु अगर कानून मानवता का भंग करता हो तो मानवता की दृष्टि से मुखियाजी को यह घर नहीं लेना चाहिए था। मगर मुखियाजी अव घर खाली कराने के लिए अधीर हो उठे। उन्होंने घर खाली कराने के लिए चारों ओर से पैरवी करनी शुरू की। जव नाई ने घर खाली कर देने में आनाकानी की; तव मुखियाजी ने कानूनी कदम उठाने के वदले कानून हाथ में लिया। उसने कुछ जवर्दस्त आदमियों को अपने पक्ष में करके इस नाई और इसके वड़े लड़कों को उनसे वहुत ही पिटवाया। एक लड़के का हाथ तोड़ डाला। दूसरे लड़कों को भी लट्ठियों से बुरी तरह से पिटवाया। एक कोठरी के पास नाई ने खाद इकट्ठा किया हुआ था, उसे उन जवर्दस्त लोगों ने जवरन भरना शुरू किया। नाई ने उन्हें खाद ले जाने से रोका तो वे लोग भी उसे मारने पर उतारू हो गए। यह मारपीट होती वहुत से लोग देख रहे थे; पर किसी ने वेचारे नाई को छुड़ाने का प्रयत्न तक नहीं किया। नाई के मन में दुर्वल मनुष्य पर सरेआम अत्याचार होते देख कर भी आँखमिचौनी करने की समाज की ऐसी वृत्ति देखकर और अपनी आँखों के सामने जुल्म होता देख कर भी किसी ने छुड़ाने का प्रयत्न न किया; यह जान कर अत्यन्त खेद हुआ अन्त में, वहुत मारपीट करके व

लोग तो भाग गए। नाई का परिवार खूब रोया। परन्तु यह अरण्यरोदन जैसा ही था। ऐसे गरीब मनुष्य की कौन सुने और कौन मदद दे ? केवल भगवान् ही इनका बेली है।

इसके पश्चात् ये लोग रिपोर्ट लिखाने के लिए वहाँ से पुलिसथाने पहुँचे। मगर वहां तो पुलिस के लोग इन जबर्दस्त लोगों के पिट्ठू थे, इसलिए उन्होंने उन जबर्दस्त लोगों के खिलाफ रिपोर्ट लिखने में आनाकानी की। अतः निराश होकर ये सब वापिस लौटे। घर आ कर मरहमपट्टी की व इलाज कराया। ऐसे सरासर अन्याय के लिए नाई के दिल में खूब ही वेदना थी, पर गरीब आदमी की पुकार सुने कौन ?

अन्त में एक परोपकारी मर्द किसान के दिल में राम जागे। उसने इस नाई के परिवार को पूरा समर्थन देने का प्रयत्न किया। नाई ने इस किसान भाई की सलाह से किसानमंडल के आगे पुकार की। खुद पर जो अन्याय हुआ था, उसके बारे में विस्तार से बताया और अर्जी लिख कर दी।

इसके बाद मैंने इस करुण प्रश्न की जांच शुरू की।·······भाई नाई तो मध्यस्थ द्वारा दिया हुआ फैसला स्वीकार करने को तैयार था। मगर मुखियाजी इसके लिए तैयार न थे। मैंने उन्हें समझाया—"आप मुखिया हैं। मुखिया का अर्थ है—गाँव का मुख। मुख अकेला किसी चीज को नहीं खाता। वह अपने पास आई हुई वस्तु शरीर के सारे अंगों को बांट देता है। इसी तरह आपको भी स्वार्थ छोड़ कर पक्षपात रखे बिना सबको न्याय देना चाहिए। जो वस्तु जिसकी हो, वह उसे दे देनी चाहिए। इसी में आपका मुखियापन है। यदि आप स्वयं गरीबों पर अन्याय-अत्याचार करेंगे तो आपको भगवान् के सामने जवाब देना ही पड़ेगा। इसलिए आपके निमित्त से····नाई के परिवार को जो अन्याय हुआ है, उसके निराकरण के लिए आपको मध्यस्थों द्वारा दिया गया निर्णय स्वीकार करके परस्पर समाधान कर लेना चाहिए। ऐसा करने से गरीबों की आपके प्रति श्रद्धा बढ़ेगी। नहीं तो, गरीब लोगों के दिल की आहों से आपका भला नहीं होगा। आप स्वयं समझदार और विचक्षण हैं। इसलिए मैं अधिक कुछ नहीं कहता। आपने एक गरीब और असहाय आदमी को सपरिवार पिटवाया, यह कैसे सहन हो सकता है ? बड़प्पन गरीबों को मरवाने-पिटवाने में नहीं है, प्रत्युत उनके साथ आत्मीयता रखने में है। इसलिए मैं आपको एक

छोटे भाई के नाते कह रहा हूँ कि आप इस झगड़े का आपस में ही समाधान करने का प्रयत्न करें।"

इतना समझाने के बावजूद भी मुखियाजी मध्यस्थ-निर्णय का स्वीकार करने से इन्कार कर रहे थे। यद्यपि नाई के परिवार की पिटाई कराने का पछतावा कर रहे थे। पर ऐसे निष्क्रिय पछतावे से क्या होता ? अभी तक मुखियाजी उस नाई के लिए स्वयं घर छोड़ देने की बात नहीं करते थे। वे तो यों ही कहते रहे कि नाई को वह घर तो मुझे सौंप ही देना चाहिए।"

किसानमंडल के कार्यकर्ताओं और तटस्थों ने मुखियाजी को बहुत समझाया। दूसरी तरह से भी उन्हें गाँव के समझदार लोगों द्वारा समझाने का प्रयत्न किया गया। अन्त में, तीन महीने के अथक परिश्रम के बाद मुखियाजी ने मध्यस्थप्रथा द्वारा निर्णय की बात स्वीकार की।

अतः दोनों पक्षों की ओर से मध्यस्थता के लिए दो-दो पंच नियुक्त किए गए। पंच एकत्रित हुए। भगवान का डर रख कर फैसला देने का उन्हें कहा गया।

सर्वप्रथम मुखियाजी की ओर से नियुक्त पंचों ने कहा—"नाई मुखियाजी को घर सौंप दे। उसके बदले में मुखियाजी उसे अपना पुराना मकान दे दें और ऊपर से ५०) रु० दें।" मुझे उनकी बात न्यायोचित न लगी। नाई के पक्ष के मध्यस्थ भी थोड़े-से मुलाहिजे में आ गए। इसलिए उन्होंने नाई को १००) रुपये ऊपर से देने को कहा। पर मुझे उनका न्याय भी वाजिब न जचा। मैं समझ गया कि ये दोनों व्यक्ति निष्ठावान होते हुए भी मुखियाजी के मुलाहिजे में आ गए हैं। इसलिए हेराफेरी की बात करते हैं। मैंने तो अपनी दृष्टि से चारों मध्यस्थों से स्पष्ट कहा—"आपकी बात मुझे उचित नहीं लगती। मैं चाहता हूँ कि कम से कम २००) रु० ऊपर से मुखियाजी को उसे देने चाहिए। अब आप चारों ही व्यक्ति जब कम रुपये कह रहे हैं तो मैं क्या करूँ ? आप चारों की बात को तोड़ कर मैं कैसे अलग जा सकता हूँ। परन्तु मेरा विनम्र निवेदन है कि 'हजाम बेचारा गरीब आदमी है। इसलिए मानवता के नाते इस पर दया रख कर कम से कम १५०) रु० तो इसे दिलाने ही चाहिये। मुझे तो इस समय यही न्यायोचित लगता है।'

मेरी बात पर पहले तो चारों मध्यस्थों में से मुखियाजी के पक्ष के दोनों मध्यस्थों ने आनाकानी की। पर अन्त में वे मेरे आग्रह व अनुरोध के कारण सम्मत हुए। फैसला इस प्रकार दिया गया—

(१) घर की अदला-बदली पर मुखियाजी नाई को १५०) रुपये दें।

(२) मुखियाजी द्वारा की हुई भूल के लिए वे नाई तथा उसके परिवार से माफी मांगे।

(३) नाई तथा उसके परिवार को मारने-पीटने वाले नाई के परिवार से क्षमा मांगें। यदि वे क्षमा न मांगें तो उन सबकी ओर से मुखियाजी स्वयं नाई के परिवार से क्षमा मांगें।"

यह फैसला सर्वानुमति से मान्य हुआ। जनता को इस न्याय से संतोष हुआ।

फैसला दिये जाने के बाद मुखियाजी ने सबको अपने घर पर बुलाए। उन्होंने हाथ जोड़ कर नाई तथा उसके परिवार से जाहिर में माफी मांगी। अपनी भूल कबूल की और इससमाधान की खुशी में सबको पेड़े बांटे।

इसके बाद नाई के पक्ष के मध्यस्थों ने भी पश्चात्ताप प्रगट किया कि—"हम मध्यस्थनिर्णय देते समय मुखियाजी के मुलाहिजे से थोड़े दब गये थे। यह हमरी गलती थी। इस गलती के बदले हम अपने पास से........नाई को ५०) रु० देते हैं।"

परन्तु पूज्य महाराजश्री ने हिदायत की कि इन दो मध्यस्थ भाइयों ने अपनी इतनी भूल का स्वीकार किया है, यह बहुत बड़ी बात है। इनसे रुपये नहीं लिये जा सकते।" इसलिए उन दोनों मध्यस्थों की भावना की कद्र की गई, मगर रुपये नहीं लिए गए।

इसकी बहुत सुन्दर छाप गाँव के लोगों पर पड़ी। जिन-जिन लोगों ने नाई को मारने-पीटने की गलती की थी, उन सबने भी जाहिरातौर पर मिल कर नाई से क्षमा मांगी और अपनी गलती का इकरार किया।

इस प्रकार वातावरण बहुत ही सुन्दर बना। सब एक-दूसरे से हिले-मिले और प्रेमपूर्वक विदा हुए।

: ५२ :

'जिसका अंत अच्छा, उसका सब अच्छा'

[गाँव छोटा हो या बड़ा, परन्तु प्रत्येक गाँव में विघ्नसंतोषी अवश्य होते हैं। इतना ही नहीं, आसपास के गाँवों के बात को कुरेदने वाले तत्त्व तक भी गाँव में फूट पड़ती है तो उसमें और. जोर-शोर से दरार डालने के लिए कूद पड़ते हैं। जोड़ने की बुद्धि उनमें से बहुत कम लोगों में पाई जाती है। किन्तु निःस्वार्थी जनसेवक यदि इस बात को हृदय में धारण कर लें तो फिर फूट की खाई को पाटते देर नहीं लगती। नीचे की घटना एक अत्यन्त शक्तिशाली और कर्तव्यपालक गाँव की (दो भाइयों की) फूट का है। ऐसे गाँव की फूट कार्यकर्ता की आँखों में रजकण की तरह खटके, यह स्वाभाविक है। सद्भाग्य से कार्यकताओं ने उस पर बहुत ही धैर्य और लगन से प्रयोग किया और उसमें उन्हें पूरी सफलता मिली, इसकी प्रतीति यह घटना करा रही हैं—]

गांव के एक सम्पन्न किसान ने अपने रहने के दो मकान, दूसरे एक किसान को किश्तों पर बेच दिये। जिन्होंने ये मकान बेच डाले थे, उनके छोटे भाई का कहना था—"इन दोनों मकानों में से एक मेरा है। मैंने आपको अपने रहने के लिए दिया था। अतः आपको वह मकान बेचना नहीं चाहिये था।" साथ ही इन मकानों को खरीदने वाले ने भी उसने कहा—"ये दो मकान आप खरीद रहे हैं, लेकिन इन दोनों में से एक मकान मेरे हिस्से का है। जहाँ तक हम दोनों भाई इस विषय में आपस में स्पष्टीकरण न कर लें; वहां तक आपको वह नहीं लेना चाहिए।" मगर बड़ा भाई (मकान बेचने वाला) बार-बार कहता रहता—"ये दोनों मकान मेरे हैं। रहने के लिए देने की तेरी बात बिलकुल झूठी है। ४० साल पहले जब हमारा बंटवारा हुआ था, तब ये दोनों मकान मेरे हिस्से में आये थे। इनमें तेरा कोई अधिकार नही है। मैं चाहे जिसे बेच सकता हूँ।" इसके विरुद्ध छोटे भाई ने भी 'मेरी बात सच्ची है' ऐसा लोगों ने कहा। इस पर से फूट का बीजारोपण हो गया।

इस झगड़े में से छोटी बड़ी अनेक चिनगारियाँ फूटीं और फूट की आग बढ़ने लगी। पहले की भूलें एक-दूसरे ने खोद-खोद कर कुरेदनी शुरू की और इस आपाधापी से धीरे-धीरे गांव में दो दल हो गए। फिर तो पूछना ही क्या? रोजाना अनेक नई-नई बातें बाहर आने लगीं। समाधान होने के बदले कुसंप बढ़ता ही चला गया।

इस सारी परिस्थिति की जानकारी किसानमंडल के कार्यकर्ताओं को दी गई। अतः मैं और अन्य दो-तीन कार्यकर्ता.......गाँव में पहुँचे। सबको समाधान के लिए समझाया। मगर समाधान के कोई आसार न दिखाई दिये। फिर भी हमने समाधान कराने के लिए बातचीत तो जारी ही रखी।

कुछ समय बाद इस झगड़े के समाधान के लिए मध्यस्थपंच नियुक्त किया गया, जिसमें किसानमंडल का प्रतिनिधित्व मुख्यरूप से रखा गया। मध्यस्थनिर्णय में इस मकान के प्रश्न के साथ लगभग ३० प्रश्न और जोड़ दिये गए। मध्यस्थों ने फैसला दिया, परन्तु उसका पालन न हुआ। एक पक्ष के भाइयों को इससे संतोष न हुआ। उनका कहना यह था कि "मध्यस्थ-पंचों ने फैसला देने में उतावल की है। साक्षियों की पूरी जांच नहीं हुई। इसलिए इस मामले में फिर से जांच होनी चाहिये।" उसके जवाब में उन्हें बताया गया कि "हमारी संस्था (किसानमंडल) के प्रतिनिधित्व में मध्यस्थप्रथा द्वारा जो निर्णय दिया जाता है, वह अन्तिम माना जाता है। उस पर अपील नहीं हो सकती। अलबत्ता, मंडल पर प्रायोगिक संघ है। वह चाहे तो इस विषय में जांच कर सकता है। परन्तु जब गाँवों में न्याय के बारे में स्वावलम्बन बढ़ाना है तो पुनः जांच का रिवाज डालना उचित नहीं है।"

परन्तु यह बात उनके गले नहीं उतरी। मुख्य अग्रणी ने कहा—निःस्पृही पंचों का दिया हुआ फैसला हमें ईश्वरीय न्याय मानना चाहिए। हाँ, अगर बड़े भाई को खुद को यह लगता हो कि त्याग की दृष्टि से मुझे अपने छोटे भाई को मकान सौंप ही देना है और यह झगड़ा शान्त ही कर देना है; तो अलग बात है; किन्तु पंचों को तो अब हमसे कुछ नहीं कहा जा सकता। अथवा पंचों को ऐसा लगता हो कि इस फैसले के देने में हमारी भूल हुई है

और अभी पुनः जांच करनी जरूरी है, ऐसा सोच कर वे ऐसा करें तो यह अलग बात है। लेकिन फैसले के सम्बन्ध में तो मध्यस्थों द्वारा दिये गए न्याय के विरुद्ध हम एक भी अक्षर बोल नहीं सकते।"

परन्तु यह बात उनके साथियों के गले न उतरी। वे तो एक ही बात कहते रहे—"जहाँ तक फैसले के सम्बन्ध में फिर से जांच नहीं की जायगी, वहां तक हम समाधान नहीं करेंगे।" छोटे भाई के पक्षवालों का यह भी कहना था—"हमारे साथ बड़े भाई ने बहुत अन्याय किया है। जहाँ तक उनके रहन-सहन और व्यवहार में तब्दीली न हो, वहाँ तक हम समाधान करना नहीं चाहते। बड़े भाई को ढीला करने के लिए यह हमारा एक कदम है। अलबत्ता, हम बिना विचारे कोई अघटित काम नहीं करेंगे, इसके लिए आप विश्वास रखें।"

दूसरे पक्ष की ओर से भी विरोधी पक्ष को ढीला करने के प्रयत्न चल रहे थे। प्रतिदिन अलग-अलग बैठकें होती थीं। इसमें कई ऐसे पिट्ठू भी मिल गए थे, जो गाँव के संघर्ष में वृद्धि करते रहते थे।

अब मेरे मन में इस प्रश्न को जल्दी से जल्दी निपटाने की अत्यन्त तीव्रता पैदा हुई। इसलिए मैं बार-बार इस गांव में जा कर अलग-अलग भाइयों से व्यक्तिगतरूप से मिलता रहता। बहनों से भी मिलता और उन्हें भी समझाता; और इस बात की पूरी निगरानी रखता कि ये लोग कोई अघटित कदम न उठा बैठें। लगभग २० दफा इस कार्य के लिए मुझे जाना पड़ा था।

नूतन वर्ष के दिन सुबह समाधान हो जाने का लगभग निश्चित हो गया था। लेकिन एक-दो भाइयों की जिद्द के कारण वह समाधान लटकता रह गया। इससे मेरे मन को बहुत आघात लगा। परन्तु मैंने विशेष धैर्य रख कर अपना पुरुषार्थ जारी रखा। यों २-३ महीने बीत गये। फिर पुनः समाधान की बातचीत चलाई, परन्तु इसमें भी मैं असफल रहा। किसान-मंडल के प्रतिनिधि भी बार-बार समाधान कराने में दिलचस्पी ले रहे थे और बहुत ध्यान रखते थे।

परन्तु शुद्धि-प्रयोगकार्य के एक जिम्मेवार कार्यकर्ता के नाते मुझे अपनी

विशेष जिम्मेवारी मालूम हुई। दूसरे,....गाँव के लोगों से मैं अपने हृदय का बोझ हलका करने के लिए दो शब्द भी कह डालता था। वे सब श्रद्धा से उसे सुन लेते और मुझे जरा भी मनोदुःख न हो, इसकी सावधानी रखते थे। इसलिए मुझे अपनी जिम्मेवारी बढ़ती मालूम दी। इसलिए मैंने ....गाँव के प्रति मेरी अत्यन्त सद्भावना होते हुए भी यह निश्चय किया कि "जब तक समाधान न हो जाय, तब तक मुझे इस गाँव का भोजन नहीं लेना है।" गाँव का पानी तो लेता ही था। इससे किसान भाइयों को जरा धक्का लगा है, ऐसा मुझे एक कार्यकर्ता के कहने से पता लगा। परन्तु एक दूसरे के प्रति अन्दर ही अन्दर मन में पड़े हुए मालिन्य या भेद ने इस काम को आगे बढ़ने न दिया।

अब मैं इस गाँव के शीघ्र समाधान के लिए अधीर बना। क्योंकि मुझे लगता था कि समाधान जल्दी नहीं हुआ तो इसके परिणाम खतरनाक आएँगे। इसलिए मैंने तत्काल समाधान कराने के लिए कार्यकर्ता श्री....भाई के सामने प्रस्ताव रखा और 'इसके लिए मैं खुद ७ उपवास लगातार करूँ, ऐसा भी विचार उन्हें बताया। परन्तु उन्होंने कहा—"उपवास का अवसर आएगा, तभी उपवास करना ठीक रहेगा। अभी तो हम थोड़े-से अगुआ किसानों को तथा उनके सगे-सम्बन्धियों को....गांव में एक साथ बुला लें और समाधान की भूमिका तैयार करें। उतने समय तक आप उपवास करने का धैर्य रखें।"

मुझे यह बात पसंद आई। इसके बाद लगभग ५-६ गाँव के उनके सगे-सम्बन्धियों तथा कुछ समझदार भाइयों को ता० २६-४-५९ को रात को.... गाँव में बुलाए। लगभग सभी आए। हम कार्यकर्ता तथा अन्य मिलाकर कुल १० व्यक्ति थे। शाम को भोजन के बाद प्रार्थना द्वारा मंगलाचरण करके बातचीत शुरू की। परन्तु विरोधी पक्ष के लोगों की ओर से एक ही बात बारबार दुहराई जाती कि हम मध्यस्थों द्वारा दिये गए फैसले से संतुष्ट नहीं हैं। हमें अपना मकान मिलेगा उसके बाद ही समाधान की बात होगी। एक भाई ने तो सौगंध खा लिये कि "ऐसा नहीं हो, वहाँ तक समाधान नहीं

करेंगे।" परन्तु दूसरे गाँवों से आए हुए भाइयों तथा हम सबको इन भाइयों की वात अच्छी न लगी। अव हम सवको यह लगा कि समाधान हो ही जाना चाहिए। समाधान में विलम्व करने का अव कोई कारण नहीं दिखाई देता।

अन्त में, छोटे भाई के गले यह वात उतर गई। वे भी समाधान के लिए अव उत्सुक थे। उन्होंने अपने जवान लड़कों को समझाया—"वोलो तुम्हारी क्या इच्छा है? मुझे तो अव किसी भी तरह से समाधान करना है। अव हमें पिछली सव वातें भूल जानी हैं। ये सव भाई हमारे लिए कितनी तकलीफ उठाकर आए हैं, उसका तुम्हें भान नहीं है! तुम समाधान न करने का कह रहे हो, तो मैं इन सवके सामने क्या मुँह वताऊँगा?" यों कहते-कहते वे भाई गद्‌गद् हो गए। सवके दिल पर इस वात का वहुत अच्छा प्रभाव पड़ा।

इसके वाद एक-दो भाई खड़े हुए और जिन भाई समाधान करने के विरुद्ध थे उन्हें वाहर वुला कर ले गए। उन्हें विठा कर समझाने में लगभग दो घंटे लगे। अन्त में, रात के करीव दो वजे वार्तालाप का सुन्दर परिणाम नजर आया। सभी लोग समाधान करने के लिए पूरी तरह से सहमत हुए तथा सवेरे ७ वजे सवने फिर मिलने का निश्चय किया और सभी विदा हुए।

ता० २७।४।५६ का सूर्य सवके लिए कितना आनन्ददायक था! मानो आज का सूर्य सोने का हो और प्रेम का स्वर्णिम सन्देश ले कर आया हो! कुछ ही देर में···अग्रणी भाई के यहाँ सभी इकट्ठे हुए। प्रार्थना की। उसके वाद मैंने प्रसंगोपात्त वक्तव्य दिया। दोनों पक्ष के भाइयों ने कुछ कहा और मंडल का एवं सभी आमंत्रित भाइयों का उन्होंने आभार माना। मेरे लिए भी उन्होंने हार्दिक भावना प्रगट की। इस अवसर पर मैंने पू० महाराजश्री के आशीर्वाद का वात सवको ध्यान दिलायी तथा हमसे जाने-अजाने किसी का भी हृदय दुःखित हुआ हो, उसके लिए माफी माँगी।

वातावरण बहुत ही सुन्दर बन गया था ! सबको गुड़ का प्रसाद दिया गया। दोनों पक्ष के भाई; जो प्रार्थना के समय एकत्र बैठने को तैयार नहीं थे, अब उन्होंने एक-दूसरे को गुड़ खिलाया और कहने लगे—"अब हम इस गुड़ की मिठास के साथ ही पहले की सब कड़वाहट भूल जाँय और निखालिस तौर पर जीवन बिताने का प्रयत्न करें।"

इस प्रकार इस दुःखद कलह का अन्त आ गया। सबने परस्पर प्रेम व्यवहार दिखाया और प्रेम से सब विदा हुए। यह सच ही कहा है—

'जिसका अन्त अच्छा, उसका सब अच्छा !'

(सम्पूर्ण)

लेखक की समाजनिर्माणोपयोगी कृतियां

१. धर्ममय समाजरचना का प्रयोग
२. ध्येय और प्रयोग—प्रश्नोत्तरी
३. धर्ममय समाजरचना के मूलाधार
४. गृहविवेक-तालीम
५. आदर्श गृहस्थाश्रम (हिन्दी में अनुवादित)
६. अहिंसा के सामूहिक प्रयोग
७. विश्ववात्सल्य, सर्वोदय अने कल्याणराज्य (गुजराती)
८. साधुसंस्था की अनिवार्यता अने उपयोगिता (गुजराती)
९. क्रान्तिकारो ···· ···· ····(गुजराती)
१०. धर्मानुबन्धी विश्वदर्शन भा० ८ (गुजराती)
११. साधुसाध्वियों से (गुजराती और हिन्दी)
१२. अनुबन्ध-विचारधारा (गुजराती और हिन्दी)
१३. शिविरप्रवचनोनी झांखी (गुजराती)
१४. दर्शनविशुद्धि (गुजराती)
१५. संयमनी दृष्टिए संततिनियमन (गुजराती)
१६. शराब से सर्वनाश
१७. मांस, मछली और अंडों से हानियाँ
१८. तम्बाकू से बर्बादी
१९. साधुसंस्था और आज की समस्याएँ
२०. वरविक्रय
२१. शुद्धिप्रयोग की झांकी
२२. अनुबन्ध-विचार क्या, क्यों और कैसे ?